

सामान्य सूची ।

विषय	पृष्ठ
सूचना	1
कालक्रम	१-३
प्रस्तावना	४-१०
तीसरे कर्म ग्रन्थ की विषय सूची	१४-१५
ग्रन्थ रूप में निर्दिष्ट पुस्तकें	१६
अनुवाद मण्डित तीसरा कर्म ग्रन्थ	१-७५
परिशिष्ट (क)	७६-८०
परिशिष्ट (ख)	८३-१०३
परिशिष्ट (ग)	१०४-१०६
शुद्धिपत्र	१०७

प्रामाण्य सूची ।

विषय	पृष्ठ
सूचना	१
कलकत्ता	१-३
प्रस्तावना	४-१०
सोमर के प्रथम की विषय सूची	१४-१५
प्रमाण रूप में निर्दिष्ट पुस्तकें	१६
अनुवाद मद्रिज सोमर के प्रथम	१-७५
परिशिष्ट (क)	७६-८०
परिशिष्ट (ख)	८३-१०३
परिशिष्ट (ग)	१०४-१०६
शुद्धिपत्र	१०७

इसके बाद अनुवाद-सहित मूल ग्रन्थ है। इसमें मूल गाथा के नीचे छाया है जो संस्कृत जानने वालों के लिये विशेष उपयोगी है। छाया के नीचे गाथा का सामान्य अर्थ लिख कर उसका विस्तार से भावार्थ लिखा गया है। पढ़ने वालों की सुगमता के लिये भावार्थ में यन्त्र भी यथास्थान दामिल किये हैं। बीच बीच में जो जो विषय विचारास्पद, विवादास्पद, या संदेहास्पद आया है उस पर टिप्पणी में अलग ही विचार किया है जिससे विरोधदर्शियों को देखने व विचारने का अवसर मिले और साधारण अभ्यासियों को मूल ग्रन्थ पढ़ने में कठिनता न हो। जहां तक हो सका, टिप्पणी आदि में विचार करते समय प्रामाणिक ग्रन्थों का हवाला दिया है और जगह २ दिगम्बर ग्रन्थों की संमति-विमति भी दिव्यार् है।

अनुवादके बाद तीन परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट (क) के पहले भाग में गोम्मटसार के खास स्थलों का गाथाचार निर्देश किया है जिससे अभ्यासियों को यह मातृम हो कि तीसरे कर्मग्रन्थ के माय सम्बन्ध रखने वाले कितने स्थल गोम्मटसार में हैं और इस के लिये ठमका कितना २ हिस्सा देखना चाहिये। दूसरे भागमें श्वेताम्बर-दिगम्बर शास्त्र के समान-असमान कुछ भिन्नान्तों का उल्लेख इस आशय से किया है कि दोनों संप्रदाय का तार्किक विषय में कितना और किस किस भाग में धार्मिक और वैषम्य

है। सत्येक सिद्धांत का अर्थ है बड़े-
 कम टिप्पणी के दृष्ट का मन्दर सुचित
 'सिद्धांत' पर विशेष विचार दिया है
 हमें यह है कि यह सम्बन्ध हमने वाली ए
 का बड़े है। परिशिष्ट (ग) में मूल गा
 मंजूर द्वारा तथा (द्वितीय-अर्थ-आदि) के
 के अर्थानिष्ठों के सुधीने के सिद्धे के

अनुवाद में कोई भी विषय सात
 इस बात की ओर ध्यान दिया
 पूर्णतः विशेष विचार के सिद्धे अर्थ
 करने की सम्पूर्ण प्रदर्शित की है। क्या
 वक्त के अर्थानिष्ठों के सुधीने के सिद्धे
 का मंजूर गा विषय में अंशक करने
 की है। निम्न पर भी अज्ञान भाष में
 हो जैसे वक्त पाठक संशोधित कर लेवे
 की वक्त की तादृ दूसरी भाषा में सु

प्रस्तावना

विषय—साहित्यिकों में गुणस्थानों की स्तर स्तर-व्यवस्था का वर्णन इन बसंतव्य में किया है; अर्थात् किन किन श्रेणियों में किन किन गुणस्थानों का समावेश है और आदर्श-साहित्यिकों की आकांक्ष-रूप में तथा गुणस्थान के विभागानुसार बसंत-व्यवस्था-वर्गीकरण की योग्यता है इस का वर्णन प्रस्तुत रूप में किया है।

सार्गदा, गुणस्थान और इन का पारस्परिक सम्बन्ध ।

(क) सार्गदा—संसार में जीव-राशि अनन्त है। सब जीवों के कुछ और पारस्परिक जीवन की बनावट में भिन्न है। क्या हिन्दू-धर्म, क्या इन्द्रिय-व्यवस्था, क्या रूप-रंग, क्या बाल-हास, क्या विचार-शक्ति, क्या मनो-बल, क्या विचारजन्य भाव, क्या चरित्र, सब विषयों में जीव एक दूसरे से भिन्न हैं। यह भेद-विभाग वर्णजन्य—भौतिक, औपचारिक, प्रायोगिक, और ऐहिक—आदि पर तथा सहज पारिणात्मिक भाव पर आधारित है। भिन्नता की यह भेद-वर्गीकरण है कि इस में मात्रा जगत् स्वरूप ही अज्ञायवत्पन्न बना हुआ है। इन अनन्त भिन्नताओं की शक्तियों न संक्षेप में पण्डित विद्वानों में विभाजित किया है। शौद्ध विभागों के भाव-व्यवस्था विभाग

दिये हैं, जो ६२ हैं। जीवों की बाह्य-भ्रान्तरिक-जीवन-सम्बन्धिनी अनंत भिन्नताओं के बुद्धिगम्य एक वर्गीकरण को शास्त्र में 'मार्गणा' कहते हैं।

(ख) गुणस्थान—मोह का प्रगाढ़तम आवरण, जीव की निकृष्टतम अवस्था है। संपूर्ण चारित्र-शक्तिका विकास—निर्मोहता और स्थिरता की पराकाष्ठा—जीव की उत्कृष्टतम अवस्था है। निकृष्टतम अवस्था में निकल कर उत्कृष्टतम अवस्था तक पहुँचने के लिये जीव मोह के परदे को कनशा दृष्टता है और अपने स्वामाबिक गुणों का विकास करता है। इस विकास-मार्ग में जीव को अनेक अवस्थाएँ तय करनी पड़ती हैं। जैसे घरमागिहर की नसी के अङ्क, उष्णता के परिमाण को बतलाने हैं येन ही एक अनेक अवस्थाएँ जीव के आध्यात्मिक विकास की मात्रा को जनाती हैं। दूसरे राष्ट्रों में इन अवस्थाओं को आध्यात्मिक विकास की परिमाणक रेखाएँ कहना चाहिये। विकास-मार्ग की इन्हीं क्रमिक अवस्थाओं को 'गुणस्थान' कहते हैं। इन क्रमिक संख्यागीत अवस्थाओं को ज्ञानियों ने संक्षेप में १४ विभागों में विभाजित किया है। यही १४ विभाग केन शास्त्र में '१४ गुणस्थान' कहे जाते हैं।

वैदिक साहित्य में इस प्रकार की आध्यात्मिक अवस्थाओं का वर्णन है। 'पानञ्चल योग-दर्शन' में ऐसी आध्या-

मह भूमिदाओं का मधुमती, अधुमती, विशोका और
 १. नाम से चर्च किया है । १ योगवासिष्ठ में अज्ञान
 का यह ज्ञान की रात इस तरह चौदर विषय-भूमिदाओं
 विचार आध्यात्मिक विकास के आधार पर बहुत विस्तार
 दिया है ।

(ग) मार्गदा और गुणस्थान का पारस्परिक अन्तर—
 मार्गदाओं की कल्पना हमें-वदल के सरतमभाव पर अवलम्बित
 नहीं है, किन्तु जो शारीरिक मार्गतिक और आध्यात्मिक
 विभिन्नताएँ जीव की देरी हुए हैं वही मार्गदाओं की कल्पना
 का आधार है । इस के विपरीत गुणस्थानों की कल्पना
 हमें-वदल के, शाम कर मोहनीय हमें के, सरतमभाव और
 योग की प्रवृत्ति-निवृत्ति पर अवलम्बित है ।

मार्गदाएँ जीव के विकास की सूचक नहीं हैं किन्तु वे
 हमें-वदल आभासिक-वैभासिक रूपों का अनेक प्रकार से प्रदर्शित
 हैं । इस में वदल गुणस्थान, जीव के विकास के सूचक हैं; वे
 विकास की क्रमिक अवस्थाओं का स्पष्ट वर्गीकरण है ।

मार्गदाएँ मह गद-भाषिणी है पर गुणस्थान हम-भाषी ।
 इसी कारण प्रत्यक्ष जीव में एक साथ चौदहों मार्गदाएँ किसी

न किसी प्रकार में पाई जाती हैं—ममी संमार्ग जीव एक ही समय में प्रत्येक मार्गणा में वर्तमान पाये जाने हैं । इस में वलदा गुणस्थान एक समय में एक जीव में एक ही पाया जाता है—एक समय में मय जीव किसी एक गुणस्थान के अधिकारी नहीं बन सकते, किन्तु इन का कुछ भाग ही एक समय में एक गुणस्थान का अधिकारी होता है । इसी बात को योंभी कह सकते हैं कि एक जीव एक समय में किसी एक गुणस्थान में ही वर्तमान होता है परन्तु एक ही जीव एक समय में चौदहों मार्गणाओं में वर्तमान होता है ।

पूर्व पूर्व गुणस्थान को छोड़ कर उत्तरोत्तर गुणस्थान को प्राप्ति करना आध्यात्मिक विकास को बढ़ाना है, परन्तु पूर्व पूर्व मार्गणा को छोड़ कर उत्तरोत्तर मार्गणा न तो प्राप्ति की जा सकती है और न इस से आध्यात्मिक प्रगति ही सिद्ध होता है । विकास की तरहवाँ भूमिका तक पहुँचे हुये—कैवल्य-प्राप्ति—जीव में भी कषाय के मिश्रण सब मार्गणाएँ पायी जाती हैं पर गुणस्थान केवल तरहवाँ पाया जाता है । अन्तिम-भूमिका-प्राप्ति जीव में भी तीन चार को छोड़ सब मार्गणाएँ होती हैं जो कि विकास की बाधक नहीं हैं, किन्तु गुणस्थान उस में केवल चौदहवाँ होता है ।

पिछले कर्मग्रन्थों के साथ तीसरे कर्मग्रन्थ की संगति-दुःख हेतु है क्योंकि उसे कोई भी नहीं चाहता । दुःख का संबंध

ज्ञात किया जा सकता है। अतः एव प्रत्येक विचार-शील प्रार्थी अपने या अन्य के आध्यात्मिक विकास के परिमाण का ज्ञान करके यह जान सकता है कि मुझ में या अन्य में किम किस प्रकार के तथा कितने कर्म के बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता की योग्यता है।

उक्त प्रकार का ज्ञान होने के बाद फिर यह प्रश्न होता है कि क्या समान गुणस्थान वाले भिन्न भिन्न गति के जीव या समान गुण-स्थान वाले किन्तु न्यूनाधिक इन्द्रिय वाले जीव कर्म-बन्ध की समान योग्यता वाले होते हैं या अममान योग्यता वाले? इस प्रकार यह भी प्रश्न होता है कि क्या समान गुणस्थान वाले रघावर-जंगम जीव की या समान गुणस्थान वाले किन्तु भिन्न-भिन्न-योग-युक्त जीव की या समान गुण-स्थानवाले भिन्न-भिन्न-लिंग (वेद)-धारी जीव की या समान गुणस्थान वाले किन्तु विभिन्न कषाय वाले जीव की बन्ध-योग्यता बराबर ही होती है या न्यूनाधिक? इन तरह ज्ञान, दर्शन, संयम आदि गुणों की दृष्टि में भिन्न भिन्न प्रकार के वास्तु गुणस्थान की दृष्टि में समान प्रकार के जीवों की बन्ध-योग्यता के सम्बन्ध में कई प्रश्न उठते हैं। इन प्रश्नों का जवाब, तीसरे कर्मबन्ध में दिया गया है। इस में जीवों की गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद कषाय आदि चोदह अवयवों को लेकर गुणस्थान-क्रम में यथा समान बन्ध योग्यता दिखाई दे, जो आध्यात्मिक दृष्टि कर्मा का बहुत महत्त्व ज्ञान वाक्य है।

हमारे कर्मग्रन्थ के ज्ञान की अपेक्षा—हमारे कर्मग्रन्थ में
 १० जो लेखक जीवों की कर्म-ग्रन्थ-सम्बन्धित योग्यता
 है और हमारे में मार्गदाश्यों को लेकर। मार्गदाश्यों में
 ११ साधारण-ग्रन्थ में ग्रन्थ-योग्यता दिखाया फिर सादेक मार्गदा
 १२ कदा-ग्रन्थ गुणवानों को लेकर वह दिखाते गाँ है। इसीलिए
 दोनों कर्मग्रन्थों के विषय मिल होने पर भी इनका
 में जगता धर्मिक सम्बन्ध है कि जो हमारे कर्मग्रन्थ को
 १३ तरह न वह ले वह हमारे का अधिकारी ही नहीं हो
 १४। यह हमारे के पहले हमारे का ज्ञान कर लेना चाहिये।

प्राचीन और मदीन हमारा कर्मग्रन्थ—ये दोनों, विषय
 समान हैं। प्राचीन की अपेक्षा प्राचीन में विषय-वर्णन
 १५ में दिया है; यही भेद है। इसी से प्राचीन में
 विषय १५ गाथाओं में वर्णित है कतना ही विषय
 प्राचीन में १५ गाथाओं में। ग्रन्थकार ने अध्यासियों की
 सरलता के लिए प्राचीन कर्मग्रन्थ की रूपमा में यह ध्यान रखता
 है कि विषय-वर्णन शब्द-विज्ञान न हो और विषय पूरा आवे।
 इसी लिए प्राचीन आदि मार्गदाश्यों में मार्गदाश्यों की सरलता के
 निदेशों के साथ प्राचीन कर्मग्रन्थ में ग्रन्थ-वर्णन के कथन में
 अमल-ग्रन्थ है जहाँ कर्मग्रन्थ में वैसा नहीं किया है, किन्तु
 यद्यपि समान गुणवानों का लेकर ग्रन्थ-वर्णन दिखाया है
 जिसमें जो इन की सरलता का अध्यासी आप ही जानें।

नवीन कर्मग्रन्थ है संक्षिप्त, पर वह इतना पूरा है कि इस के अभ्यासी थोड़े ही में विषय को जानकर प्राचीन ग्रन्थ-स्वामित्व को बिना टाँका-टिप्पणी की मदद के जान सकते हैं। इसी से पठन-पाठन में नवीन तीसरे का प्रचार है।

गोम्पटसार के साथ तुलना—तीसरे कर्मग्रन्थ का विषय कर्मकाण्ड में है, पर इन की वर्णन-शैली कुछ भिन्न है। इस के मिश्राय तीसरे कर्मग्रन्थ में जो जो विषय नहीं हैं और दूसरे के सम्यन्ध की दृष्टि में जिस जिस विषय का वर्णन करना पड़ने वालों के लिए लाभदायक है वह सब कर्मकाण्ड में है। तीसरे कर्मग्रन्थ में मार्गशास्त्रों में केवल ग्रन्थ-स्वामित्व वर्णित है परन्तु कर्मकाण्ड में ग्रन्थ-स्वामित्व के अतिरिक्त मार्गशास्त्रों को लेकर उदय-स्वामित्व, उदोरण-स्वामित्व, और सत्ता-स्वामित्व भी वर्णित है। [इस के विशेष मुलान के लिये परिशिष्ट (क) नं. १ देखो]। इसलिए तीसरे कर्मग्रन्थ के अभ्यासियों को उसे अवरय देखना चाहिये। तीसरे कर्मग्रन्थ में दर्शन-स्वामित्व आदि का विचार इर्माजए नहीं किया जान पड़ता है कि दूसरे और तीसरे कर्मग्रन्थ के पढ़ने के बाद अभ्यासी उसे स्पष्ट मोक्ष लेवे। परन्तु आज हम तैयार विचार को मजबूत जानते हैं, स्वयं विचार का विषय को न नवीन व पढ़ने के रूप में जानें हैं। इसलिए कर्मकाण्ड की एक विराजता से सब अभ्यासियों को लाभ उठाना चाहिये।

तीसरे कर्मग्रन्थ की विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	गाथा
मंगल और विषय-कथन	१	१
संकेत के लिये उपयोगी प्रकृतियों का संग्रह...	३	२-
नरकगति का बन्ध-स्वामित्व ...	५	४-
सामान्य नरक का तथा रत्नप्रभा आदि		
नरक-श्रय का बन्धस्वामित्व-यन्त्र ...	६	
षष्कप्रभा आदि नरक-श्रय का बन्धस्वामित्व-		
यन्त्र	१०	
वियेक्ष्यगति का बन्धस्वामित्व ...	११-१४	७-
सातवें नरक का बन्धस्वामित्व-यन्त्र ...	१३	
अष्टांश वियेक्ष्य का बन्धस्वामित्व-यन्त्र ...	१७	
मनुष्यगति का बन्धस्वामित्व ...	१८	
अष्टांश मनुष्य का बन्धस्वामित्व-यन्त्र ...	२०-२१	
सन्धि अपर्याप्त वियेक्ष्य तथा मनुष्य का		
बन्धस्वामित्व-यन्त्र ...	२२	
देवगति का बन्ध-स्वामित्व	२३-२६	१०-

अनुवाद में प्रमाणरूपसे निर्दिष्ट पुस्तकें

भगवद्गीता सूत्र ।

इत्तराध्ययन सूत्र । (आगमोद्घ ममिति, मुरल) ।

औपनिषद सूत्र । (आगमोद्घ ममिति, मुरल) ।

आचारानि निर्बुद्धि ।

तत्त्वार्थ भाष्य ।

पञ्चसूत्र ।

चन्द्राय मंगलम् ।

शौचा नवीन कर्ममन्त्र ।

प्राचीन बन्ध-स्वामित्व (प्राचीन श्रीमत् कर्ममन्त्र) ।

लोकप्रकार ।

जीवविजयजी-टिप्पणी ।

जयसोमनरि-टिप्पणी ।

मर्यादामिद्धि-टीका (पूज्यपादस्वामि-कृत) ।

गोष्मटसार-जीवकाण्ड तथा कर्मकाण्ड ।

पातञ्जल योगसूत्र ।

योगवासिष्ठ ।

श्री देवेन्द्रगिरि विगिचेन

वन्द्यस्यामित्य नामक तीसरा कर्मग्रन्थ ।

(हि.री-अष्टाशुभाद-रुद्रि ।)



“ संनक्त चौर विषय-वपन । ”

वन्द्यविराजविभूत, वन्दित्य गिरिवन्द्यपाणिनिमुच्यते ।
गङ्गापारंगुं मुच्यते, समानमो वपनमिषं ॥ १ ॥

वन्द्यविराजविभूतं वन्दित्या श्रीगङ्गावन्दनमुच्यते ।
गङ्गापारंगुं वन्द्ये समानमो वन्द्यवपनमिषम् ॥ १ ॥

अर्थ—आजान् वन्दित्यवन्दन जो वन्द्य के समान सौम्य
है, तथा जो वन्द्य-वपन के विधान से निवृत्त हैं—वन्द्य को नदी
वैधान—वन्द्य नदीकार वन्द्य गति आदि वन्द्य मीमांसा में वन्द्य-
वन्दन आदि के वन्द्यवन्दन को मैं वन्द्य से कहूँगा ॥ १ ॥

धारा ।

“ वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं ”
वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं वन्द्यवन्दनं

(२८), मध्यमसंस्थान-चतुष्टय—व्यमोघपरिमहदन, सादि,
 मामन, कुञ्ज—(३२), मध्यममंहनन-चतुष्टय—रूपमनागन,
 नाराय, अर्धनाराय, कालिका—(३६), अशुभाविहायोगति (३७),
 नीचगोत्र (३८), र्क्षा वेद (३९), दुर्भंग-त्रिक-दुर्भंग, दुःखर,
 अनोदयनामकर्म—(४०), मयानर्द्धि-त्रिक-निशानिद्रा, प्रचला-
 प्रचला, मयानर्द्धि—(४१), उगोननामकर्म (४६), निर्यञ्च-
 द्विक—निर्यञ्चगति, निर्यञ्चमानुषी—(४८), निर्यञ्चआयु
 (४९), मनुष्य आयु, (५०), मनुष्य-द्विक—मनुष्यगति,
 मनुष्यआनुषी—(५२), आहारिक-द्विक—आहारिक शरीर,
 आहारिक अगोपाग—(५४), और वस्तुमनारायमंहनन (५५)
 इस प्रकार ५५ प्रकृतियों हुई ॥ ३ ॥

भारत-वक ५५ कर्म प्रकृतियों का शिरोर वययोग इस
 कर्म-म-४ में संकेत के लिये है । यह संकेत इस प्रकार है—

हिमी अविमल प्रकृति के आगे तिस गङ्गा का कर्म
 दिया है, उग प्रकृति में लेकर अपनी प्रकृतियों का प्रह
 वक ३ : कर्म प्रकृतियों में से दिया जाता है । उदाहरणार्थ
 'मन्त्रकान्तिकर्त' यह संकेत देखाइए म अक अना-यग
 १. का वक है ॥ ३ ॥ ॥ ॥

मनुष्य, मिथ्यात्व, गुण्ड और मेवात इन ४ प्रवृत्तियों
 ... नामादन गुणस्थानवासे नारक जीव बाँधे महीं रहते.
 ... जीव इनका बन्ध मिथ्यात्व के उदयकाल में होता है, पर
 ... यात्र वा कदम नामादन के मदय नहीं होता ॥ ४ ॥



... अणु अणु-द्वीप सीते, विमयोर संयामि निगुनराडनुया ।
 ... य स्वग्राशु भंगो, पंचाशु निग्यपरसीशो ॥ ५ ॥

... रिताडनप्रवृत्ति विधे द्वातपतिः सम्प्रचरो विगनरायुर्दना ।
 ... इति रत्नादिषु भंगः पञ्चदशु तीर्थहरदीनः ॥ ५ ॥

अर्थ—जीमो गुणस्थान में बनेमान नारक जीव ७०
 प्रवृत्तियों को बाँधते हैं, क्योंकि पुरोक्त ६६ में से अगत्यानु-
 बांध-बनुच में लेकर मनुष्य-आयु-पर्यन्त २६ प्रवृत्तियों
 को बंधे महीं बाँधते । बाँधे गुणस्थान में बनेमान नारक कल
 ७० तथा जिन नामकर्म और मनुष्य आयु, इन ७२ प्रवृत्तियों
 को बाँधते हैं । इस प्रकार नारकगति का यही सामान्य
 बन्ध-बांधि मनुष्यमा आदि तीन नरकों के नारकों को पागे
 नामस्थानाम आयु पदना है । पञ्चप्रभा आदि तीन नरकों में भी
 न पञ्च नामकर्म के विहाय यही सामान्य बन्ध-बांधि मनु-
 ... ॥ ५ ॥

भारार्थ—पंचमभा आदि तीन नरकों का संप्रत्यभाव ही ऐसा है कि जिसमें उनमें रहने वाले नारक जीव मग्न्यन्तरी होने पर भी सोचकर नामकर्म को बाँध नहीं सकते । इसमें उनको सामान्यरूप से तथा विशेषरूप से-पहले गुणस्थान में १०० प्रवृत्तियों का, दूसरे में ६६, तीसरे में ७० और चौथे में ५१ का वन्ध है ॥ ५ ॥

अनिगमगुप्तात् ओदे, सत्तमिष नरदगुत्त दिणु मिष्टे ।
इगनवै सासाणे, तिरिम्मात् नपुंराचउयगजं ॥ ६ ॥

अविनयनृपायुगेपे सप्तम्यां नन्दिकोचं विना सिध्दतरे ।
एकनरतिभ्यामादये तिर्यगाद्यनेपंगकच १५५३ वेम् ॥ ६ ॥

अथ—मान्ये नरक के नामक, सामान्यरूप में हृद
प्रवृत्तियों को बाँधने हैं; क्योंकि नरकमणि जी सामान्य-रूप
मान्य ४०२ प्रवृत्तियों में से ११२ सामान्य तथा मनुष्य आदि
को व नहीं बाँधते । उनी नरक के मिथ्या-पी नामक, उक्त हृद
में से मनुष्य मणि, मनुष्य आनन्दपी तथा उच्चमात्र को छोड़,
११२ प्रवृत्तियों का बाँधन है । और सामान्यरूप मनुष्यमान-वर्गी
नरक हृद प्रवृत्तियों को बाँधने हैं क्योंकि वे नरक, ४०२ में
निर्वच्यमान नरकमणि नामक व हृदमन्थन और मान्य
प्रवृत्तियों इन ११२ प्रवृत्तियों में से ११२ प्रवृत्तियों में से ११२

FILE

[illegible]

Item	Unit	Quantity	Price	Total
1. 1000	1000	1000	1000	1000
2. 1000	1000	1000	1000	1000
3. 1000	1000	1000	1000	1000
4. 1000	1000	1000	1000	1000
5. 1000	1000	1000	1000	1000
6. 1000	1000	1000	1000	1000
7. 1000	1000	1000	1000	1000
8. 1000	1000	1000	1000	1000
9. 1000	1000	1000	1000	1000
10. 1000	1000	1000	1000	1000

चरुदीर्घादिगहिरा, मनरदुगुच्छा ए सपरि दीमदुगे ।
रतर ओहि विच्छे, वग्गनिरिया दिगु निग्गहारं ॥७॥

५३ दीर्घादिगहिरा मनरदुगुच्छा ए सपरि दीमदुगे ।
रतर ओहि विच्छे, वग्गनिरिया दिगु निग्गहारं ॥७॥

अर्थ—पूर्वोक्त ६१ में से अनन्तानुपगम्य-अनुपद से लेकर
अ-इ-ए-उ-अ-इ-उ ६४ ब्रह्मणियों को निवार देते पर दोष ६७
नियों रहती हैं। इनमें अनुपगम्य, अनुपद-अनुपूर्वी तथा
सोत्र-मूल ब्रह्मणियों को मिलाने से कुल ७० ब्रह्मणियों होती
हैं। इनको सोमरे तथा धीमे गुणस्थान में वर्तमान मानते
हैं। (त्रिविधगति वा वग्गनिरिया)
त्र त्रिविध सामान्यस्व में तथा बदले गुणस्थान में ११७
नियों को बोधते हैं; क्योंकि जिननामकर्म तथा आधारक-इक
तीन ब्रह्मणियों को वे नहीं बोधते ॥ ७ ॥

भावार्थ—पूर्व पूर्व नरक को उत्तर उत्तर नरक में अप्य-
या व गर्ह इतनी कम ही जाना है कि अनुपद-इक तथा
सोत्र-मूल ७० गुणस्थान ॥ व व-प-य पौरुष न फल
व व-प-य पौरुष न फल है इनके व-प-य पौरुष
नामक नरक नरक में व-प-य पौरुष नरक निवार अन्य
स्थान में अप्य-या व गर्ह इतनी कम ही जाना है कि अनुपद-इक तथा

जा सकता है। अतएव उसमें सबसे अधिक पुरुष-वर्ग
वक्तु तान हो हैं।

यद्यपि मातृवै नरक के नारक-जीव मनुष्य-आयु हो
पौधते तथापि वे मनुष्य-गति तथा मनुष्य-आनुपूर्वी-नामक
पौध सकते हैं। यह नियम नहीं है कि “आयुका धन्य,
और आनुपूर्वी नामकर्म के धन्य के साथ ही होना चाहिये।



Year	1900	1901	1902	1903	1904	1905	1906	1907	1908	1909	1910	1911	1912	1913	1914	1915	1916	1917	1918	1919	1920	1921	1922	1923	1924	1925	1926	1927	1928	1929	1930	1931	1932	1933	1934	1935	1936	1937	1938	1939	1940	1941	1942	1943	1944	1945	1946	1947	1948	1949	1950	1951	1952	1953	1954	1955	1956	1957	1958	1959	1960	1961	1962	1963	1964	1965	1966	1967	1968	1969	1970	1971	1972	1973	1974	1975	1976	1977	1978	1979	1980	1981	1982	1983	1984	1985	1986	1987	1988	1989	1990	1991	1992	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	2019	2020	2021	2022	2023	2024	2025	2026	2027	2028	2029	2030	2031	2032	2033	2034	2035	2036	2037	2038	2039	2040	2041	2042	2043	2044	2045	2046	2047	2048	2049	2050	2051	2052	2053	2054	2055	2056	2057	2058	2059	2060	2061	2062	2063	2064	2065	2066	2067	2068	2069	2070	2071	2072	2073	2074	2075	2076	2077	2078	2079	2080	2081	2082	2083	2084	2085	2086	2087	2088	2089	2090	2091	2092	2093	2094	2095	2096	2097	2098	2099
1900	1901	1902	1903	1904	1905	1906	1907	1908	1909	1910	1911	1912	1913	1914	1915	1916	1917	1918	1919	1920	1921	1922	1923	1924	1925	1926	1927	1928	1929	1930	1931	1932	1933	1934	1935	1936	1937	1938	1939	1940	1941	1942	1943	1944	1945	1946	1947	1948	1949	1950	1951	1952	1953	1954	1955	1956	1957	1958	1959	1960	1961	1962	1963	1964	1965	1966	1967	1968	1969	1970	1971	1972	1973	1974	1975	1976	1977	1978	1979	1980	1981	1982	1983	1984	1985	1986	1987	1988	1989	1990	1991	1992	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017	2018	2019	2020	2021	2022	2023	2024	2025	2026	2027	2028	2029	2030	2031	2032	2033	2034	2035	2036	2037	2038	2039	2040	2041	2042	2043	2044	2045	2046	2047	2048	2049	2050	2051	2052	2053	2054	2055	2056	2057	2058	2059	2060	2061	2062	2063	2064	2065	2066	2067	2068	2069	2070	2071	2072	2073	2074	2075	2076	2077	2078	2079	2080	2081	2082	2083	2084	2085	2086	2087	2088	2089	2090	2091	2092	2093	2094	2095	2096	2097	2098	2099	

(निर्यञ्जगानि का यन्धन्वामिन्व) मन्वन्
निर्यञ्ज्य अपने जन्म-म्यमात्रमे ही जिननामधर्मे
मरने, वे आहारक-द्रव्य को भी नहीं खाँधते, २
है कि उमका वन्ध, चारित्र्य धारण करनेवालों का
है, पर तिर्यञ्च, चारित्र्य के अधिकारी नहीं हैं ।
सामान्य-यन्ध में उक्त ३ प्रकृतियों को गिनती नहीं

विष्णु नरयमोल सासणि, मुराड अलपगनीम
समुराड सपरि संपे, बीपकसाए विणा देसे ॥

विना नरकपोडय सासादने मुरायुरनैकाप्रिगतं विना ।
समुरायुः सपानिः सम्यक्त्वे हि ...

अर्थ—हमारे गुणस्थान में वर्तमान १०१ वि
प्रकृतियों को बाँधते हैं; क्योंकि पूर्वोक्त ११७ में
त्रिक से लेकर सेवार्थ-पर्यन्त १६ प्रकृतियों को वे
हमारे गुणस्थान में वे ६६ प्रकृतियों को बाँधते
उक्त १०१ में से अनन्तानुबन्धि-चमुक्त से लेकर
नाराचर्महनन-पर्यन्त ३१ तथा देवआयु इन ३२
वन्ध उनको नहीं होता । चौथे गुणस्थान में वे उक्त
देवआयु—कुल ७० प्रकृतियों को बाँधते हैं । तथा
स्थान में ६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं, क्योंकि उक्त ७०
अनन्त्यास्थानावरण कपायों का वन्ध उनको नहीं होता

- भावार्थ—चौथे गुणस्थान में वर्तमान पर्याप्त
 - देवघायु को बाँधते हैं परन्तु तीसरे गुणस्थान में वर्त-
 - ही बाँधते; क्योंकि उस गुणस्थान के समय 'घायु
 - योग्य व्यपवसाय ही नहीं होते । तथा उस गुणस्थान
 - नियुगति-योग्य ६ (मनुज-द्विक, चार्दार्क-द्विक, वस-
 - रानासपसंदनन और मनुष्य घायु) प्रकृतियों को भी वे
 - बाँधते । इसका कारण यह है कि चौथे गुणस्थान की
 - तीसरे गुणस्थान के समय, पर्याप्त मनुष्य और तिर्यक्ष हो-
 - ही देवगति-योग्य प्रकृतियों को बाँधते हैं, मनुष्यगति-यो-
 - प्रकृतियों को नहीं । इस प्रकार अनन्तानुबन्धि-पनुक्त से लेकर
 - २५ प्रकृतियों—जिनका बन्ध तीसरे गुणस्थानमें किसी को नहीं
 - होता—उन्हें भी वे नहीं बाँधते । इससे देवघायु १, मनुष्यगति
 - योग्य उक्त ६ तथा अनन्तानुबन्धि-पनुक्त आदि २५—सयमिला-
 - कर ३२ प्रकृतियों को उपर्युक्त १०१ में से घटाकर होय ६९
 - प्रकृतियों का बन्ध पर्याप्त तिर्यक्षों को त्रिभुगुणस्थान में होता
 - । चौथे गुणस्थान में इनकी देवघायु के बन्ध का सम्भव होने
 - कारण ७. प्रकृतियों का बन्ध माना जाता है ।

७ यथा सिद्धं दृश्यं आउ कथं प न करइ
 ८ बचन न सिम्भुल आउम्यय इ यादि

(निर्यञ्जगति का बन्धनत्व) मम्यन्त्रों
निर्यञ्ज अपने जन्म-स्वमायमे ही जिननाम करने
सकते, वे आहारक-द्विक को भी नहीं बाँधते; २
है कि उमका बन्ध, चारित्र्य धारण करनेवालों की
है, पर निर्यञ्ज, चारित्र्य के आधिकारी नहीं हैं ।
सामान्य-बन्ध में उक्त ३ प्रकृतियों की गिनती नहीं

विष्णु नरयसोल सासखि, सुराउ अणपगतीस ।
ससुराउ सपरि संभे, बीपकसाए विखा देसे ॥ ६
विना नरकपोडस सासादने ॥ ७ ॥
ससुरायुः सप्ततिः सम्पत्त्ये द्वितीयकपायान्विना देसे ।

अर्थ—दूसरे गुणस्थान में वर्तमान पर्याप्त १५
प्रकृतियों को बाँधते हैं; क्योंकि पूर्वोक्त ११७ में
त्रिक से लेकर सेवार्त-पर्यन्त १६ प्रकृतियों को वे
तीसरे गुणस्थान में वे ६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं
उक्त १०२ में वे अनन्तानुबन्धि-चतुष्क से लेकर
नाराचमदनन-पर्यन्त ३१ तथा देवआयु इन ३२
बन्ध उनको नहीं होता । चौथे गुणस्थान में वे उक्त
देवआयु कुल ७० प्रकृतियों को बाँधते हैं । तथा पाँचवें
स्थान में ६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं, क्योंकि उक्त ७० में
अप्रत्यायानायक कथाओं का बन्ध उनको नहीं होता ॥

(निर्यञ्जगनि का बन्धस्थानिन्) मन्त्ररूपों होने हुए निर्यञ्ज अपने जन्म-म्वभायमे ही तिननामकर्म को बाँधने मरने, वे आदारक-द्विक को भी नहीं बाँधने, इसका कारण है कि वमका बन्ध, चारित्र्य धारण करनेवालों को ही हो मक है, पर निर्यञ्ज, चारित्र्य के अधिकारी नहीं हैं । अतएव इस सामान्य-बन्ध में उक्त ३ प्रकृतियों को गिनना नहीं की है ॥ १० ॥

विष्णु नरयसोल सासणि, मुराउ अण्णगतीम विष्णु मनिं
समुराउ सपरि संमे, बाँपकसाए विष्णा देमे ॥ ८ ॥

विना नरकषोडश सासादने मुरायुरनैकविशतं विना मिथे ।
समुरायुः सप्तातिः सम्यक्त्वे द्वितीयकपायान्विना देसे ॥ ८ ॥

अर्थ—हमारे गुणभ्यान में वर्तमान पर्याप्त निर्यञ्ज १० प्रकृतियों को बाँधते हैं; क्योंकि पूर्वोक्त ११७ में से नारायणिक से लेकर सेवार्त-पर्यन्त १६ प्रकृतियों को वे नहीं बाँधते । हमारे गुणभ्यान में वे ६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं; क्योंकि उक्त १=१ में से अनन्तानुबन्धि-चतुःक से लेकर ब्रह्मचर्यन नाराचर्महनन-पर्यन्त ३१ तथा देवआयु इन ३२ प्रकृतियों का बन्ध उनको नहीं होता । चौथे गुणभ्यान में वे उक्त ६६ तथा देवआयु—कुल ७० प्रकृतियों को बाँधते हैं । तथा पाँचवें गुणभ्यान में ६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं, क्योंकि उक्त ७० में से अग्र्याख्यानावर्ग कपायों का बन्ध उनको नहीं होता ॥ ८ ॥

भावार्थ—शौधे गुरुस्थान में बनेमान पद्यों में निर्धन्य
 १. शौधे में दैत्यस्य नामरे गुरुस्थान में बनेमान श्रुति
 ही शौधे; कथोरे इस गुरुस्थान के समय "आयु शौधे
 . शौधे अथवा शौधे ही नहीं होते । तथा इस गुरुस्थान में
 गुरुस्थान १६ (मनुज-द्विक, श्रीराम-द्विक, ब्रह्म-
 . १६ मनुज और मनुज आयु) प्रकृतियों को भी वे नहीं
 पाते । इसका कारण यह है कि शौधे गुरुस्थान की तरह
 नामरे गुरुस्थान के समय, पद्यों मनुज और निर्धन्य दोनों
 ३. देवगति-योग्य प्रकृतियों को शौधे हैं; मनुजगति-योग्य
 ४. प्रकृतियों को नहीं । इस प्रकार अनन्तानुबन्धि-धनुष से लेकर
 . ५ प्रकृतियों-जिनका बन्ध नामरे गुरुस्थानमें किसी को नहीं
 ६. -उन्हें भी वे नहीं शौधे । इसमें देवआयु १, मनुजगति
 ७. ६ तथा अनन्तानुबन्धि-धनुष आदि २५-सप्तमिता-
 १२ प्रकृतियों को उपर्युक्त १०१ में से पदाकर शेष ६६
 ८. का बन्ध पद्यों में निर्धन्यों को मिसगुरुस्थान में होता
 । शौधे गुरुस्थान में इनको देवआयु के बन्ध का सम्भार होने
 . कारण ७. प्रकृतियों का बन्ध माना जाता है ।

८. मनुज-मिसगति-धनुष आदि बन्ध पद्यों में

९. ब्रह्म-मिसगति-धनुष आदि बन्ध पद्यों में

परन्तु पांचवें गुणस्थान में उनको ६६ प्रकृतियों का कल
माना गया है; क्योंकि नव गुणस्थान में ४ अप्रत्याख्यानावरण-कपाय का बन्ध नहीं होता । अप्रत्याख्यानावरण-कपाय का
बन्ध पांचवें गुणस्थान में लेकर आगे के गुणस्थानों में न होने
का कारण यह है कि 'कपाय के बन्ध का कारण कपाय का
उदय है' । जिस प्रकार के कपाय का उदय हो उसी प्रकार के
कपाय का बन्ध हो सकता है । अप्रत्याख्यानावरण-कपाय का
उदय पहले बार ही गुणस्थानों में है, आगे नहीं, अतएव इस
का बन्ध भी पहले बार ही गुणस्थानों में होता है ॥ ८ ॥



मनुष्यगति का वर्णनादिना ।

इय चतुर्गुणेषु रि नरा, परमपथा सन्निग चोद् देवत
गित् इत्यारस ईत्तं, नरसत्त अयनत्त निरियनरा ॥६॥

इति चतुर्गुणेषु रि नराः परमपथाः सन्निगमोऽं देवतादिषु ।
जिनं सप्तदशीने नरसत्तमपर्यागतियं इत्यराः ॥ ९ ॥

अर्थ—पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे गुणस्थान में
वर्तमान पर्याप्त मनुष्य, उनहीं ४ गुणस्थानों में वर्तमान पर्याप्त
तिर्यच के समान प्रकृतियों को बांधने हैं । भेद केवल इतना
ही है कि चौथे गुणस्थान वाले पर्याप्त तिर्यच, जिन नाम कर्म
को नहीं बांधते पर मनुष्य उसे बांधते हैं । तथा पांचवें गु-
णस्थान से लेकर आगे के सब गुणस्थानों में, वर्तमान मनुष्य
दूसरे कर्ममन्त्र में कहे हुये कर्म के अनुसार प्रकृतियों को बां-
धते हैं । जो तिर्यच तथा मनुष्य अपर्याप्त हैं वे जिन नाम कर्म
से लेकर नरकत्रिक—पर्यन्त ११ प्रकृतियों को छोड़ कर
पन्चयोग्य १२० प्रकृतियों में से शेष १०६ प्रकृतियों को बांध-
ते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार पर्याप्त तिर्यच पहले गुणस्थान
में ११७, दूसरे में १०१ और तीसरे गुणस्थान में ६६ प्र-
कृतियों को बांधते हैं इसी प्रकार पर्याप्त मनुष्य भी उन ३ गु-
णस्थानों में उनकी उतनी ही प्रकृतियों को बांधते हैं । परन्तु

पाँच गुणस्थान में पर्याप्त तिथि ५० प्रवृत्तियों को बाँधते हैं, पर पर्याप्त मनुष्य ५१ प्रवृत्तियों को, क्योंकि वे तिन नाम कर्म को बाँधते हैं भेदिन तिथि ५५ उसे नहीं बाँधते । पाँचवें से छे-बर सेरतबे गुणस्थान—पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान में तिनती २ सन्ध्यांग प्रवृत्तियाँ दूसरे कर्मस्थ के बन्धाधिवार में बड़ी हुई हैं, उतनी कमता ही प्रवृत्तियों को कम कम गुणस्थान के समय पर्याप्त मनुष्य बाँधते हैं, अंतः—पाँचवें गुणस्थान में ६७, छठे में ६१, सातवें में ५६ वा ५८ इत्यादि ।

अपर्याप्त तिथि ५५ तथा अपर्याप्त मनुष्य को १०६ प्रवृत्तियों का जो बन्ध बढ़ा दे, वह मागान्य तथा विशेष जानों प्रकार से समझना चाहिये; क्योंकि इसे लगे 'अपर्याप्त' शब्द का मतलब लान्घि अपर्याप्त से है, परन्तु अपर्याप्त से नहीं और लान्घि अपर्याप्त जीव को बढ़ा ही गुणस्थान होता है ।

'अपर्याप्त' शब्द का उक्त अर्थ करने का कारण यह है कि परन्तु अपर्याप्त मनुष्य, दीर्घकाल नाम कर्म को बाँध भी सकता है, पर १०६ में कम प्रवृत्ति की गणना नहीं है ॥ ६ ॥

रयणु न ममं कृपाग-३ आगयाई उज्जोगवउ गइना।

अपज्जननिगिय व नयमय, भिगिंदिपुद्धिरितननरविने ॥ ११

रत्नप्रमाणमादय आननादय उद्योगवुगिदिताः ।

अप्यांतनिर्येग्नरत्न मेरेन्द्रियतृर्धावडवमरिक्ते ॥ १२

अर्थ—तीमरे मनकुमार-देवनांक में लेकर आठवें प्रमाण तक के देव, रत्नप्रमाण-नरक के नागकों के समान प्रमाण के अधिकारी हैं; अर्थात् वे सामान्यरूप में १०१ निष्प्रात्य-गुणस्थान में १००, दूसरे गुणस्थान में ६६, तीसरे में ७० और चौथे गुणस्थान में ७२ प्रकृतियों को बाँधते हैं। आनन में अच्युत-पर्यन्त ४ देवलोक और ६ प्रवेयक के देव उद्योग-पनुक्त के मियाय और मव प्रकृतियों को सनकुमार के देवों के समान बाँधते हैं, अर्थात् वे सामान्यरूप से ६५ पहले गुणस्थान में ६६, दूसरे में ६२, तीसरे में ७० और चौथे गुणस्थान में ७२ प्रकृतियों को बाँधते हैं। (इन्द्रिय और कायमार्गणा का वन्धस्वामित्व)— एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक तथा वनस्पतिकायिक जीव, अप्यांत निर्यन्त्र के भ्रमान जिननामकर्म में लेकर नरकत्रिक-पर्यन्त ११ प्रकृतियों को छोड़कर वन्ध-योग्य १२० में से से राय १०६ प्रकृतियों को सामान्यरूप में तथा पहले गुणस्थान में बाँधते हैं ॥ ११ ॥

भारार्षि—शृंगार-चतुष्टय में शृंगारनामकर्म, १
 अथानुपूर्वी और निर्वचनानुसार का प्रत्यक्ष होता है
 अथर्वि चतुष्टयविधान के विषय में गाथा में कुछ
 शब्दों का सम्यक्त्व आदिष्ट है कि इनके द्वेष्ट नामान्तर
 शेषों गुणस्थान में ७२ प्रकृतियों के बन्ध के
 अन्ते शेषों के निवारण द्वारा गुणस्थान नहीं होता
 अथर्वि निर्वचन की तरह प्रकृत, एवंश्रुति च
 शब्दों के शेषों के परिणाम नहीं सम्यक्त्व तथा
 शेष गुण ही होते हैं, और न नरक-योग्य अतिशय
 शेष के निवर्तनात्मकर्म आदि ११ प्रकृतियों को बांध
 ने ॥ ११ ॥



छनवइ साससि विष्णु सुहृ-भतेर केइ पुण्यति चउनवई ।
तिरियनसऊहि विष्णा, तगुणज्जति* न ते जंति ॥ १२ ॥

पन्नवनिः सासादने विना मुरनद्रयोदत केवित्पुनर्मुचन्ति ।
तिर्यग्गुरादुर्द्धा विना तनुवर्णाति न ते यान्ति ॥ १२ ॥

अर्थ-पुण्योक्त एकेन्द्रिय आदि जीव दूसरे गुरुस्थान में
६६ प्रकृतियों को बाँधते हैं, क्योंकि पहले गुरुस्थान की वन्ध
योग्य १०६ में में सूरमात्रिक में लेकर मेवाग-पर्यन्त १२
प्रकृतियों को वे नहीं बाँधते । कोई आपाये करे हैं कि-“ये
एकेन्द्रिय आदि, दूसरे गुरुस्थान के सम्य तिर्यग्च आयु तथा
मनुष्यआयु को नहीं बाँधते, इसमें वे उस गुरुस्थान में ६४
प्रकृतियों को ही बाँधते हैं । दूसरे गुरुस्थान में तिर्यग्च-
आयु तथा मनुष्य आयु बाँध न म करने का कारण यह है
एकेन्द्रिय आदि, हम गुरुस्थान में रह कर शरीर
करने नहीं पाते ।” ॥ १२ ॥

* “न जंति न को” इति वाच्य ।

+ हम तथा वे बर्षान दिया हुआ ११ भौर

वन्ध की मन भेद प्रकृत्य वन्धनप्रतिष्ठ में है, यथा-

मन्वा कर्षाद मन्वस, निरजित ईश्या व मोक्ष

य यत्त वृक्षाना—मर्षे च पर्विदृशा वंशे ३

हम विषय विद्वान् मन्वा, तनु वान्ति न को

न न मन्वा इ वान्ति, मन्व वरेष

प्राप्य कहते हैं कि साम्बादनमात्र में रहकर इन्द्रिय पयोति को पूर्ण करने की भी बात ही क्या शरीर पयोति को भी पूर्ण नहीं कर सकते अर्थात् शरीर पयोति पूर्ण करने के पक्ष में ही एक-न्द्रिय आदि वस्तुओं और साम्बादन मात्रों में न्यून हो जाते हैं। इसलिये वे दूसरे गुणस्थान में रहकर आधु को बांध नहीं सकते ॥ १२ ॥

३। भाग—अर्थात् १०१ आवाधिकार्ये वीत गुह्येन पर आधु-बन्ध का सम्भव है । पर उसके पक्ष में ही साम्बादनमध्यस्थ बनना जाना है, क्योंकि वह अकृष्ट १ आवाधिकार्ये तक ही रह सकता है। इसलिये साम्बादन-अवस्था में ही शरीर पयोति और इन्द्रिय पयोति का पूर्ण बन जाना मान लिया जाय, तथापि उस अवस्थामें आधु-बन्ध का किसी तरह सम्भव ही नहीं । ” इत्यादि की पुष्टि में उन्होंने औदारिक द्विध मार्गशा का साम्बादन गुणस्थान-सम्बन्ध १४ प्रकृतियों के वक्ष का भी उल्लेख किया है । ११ का वक्ष माननेवाले आचार्य का क्या अभिप्राय है, हमें कोई नहीं जानते। यही बात भी जीवविज्ञपत्री और भी प्रथमो मस्ति ने अपने हठ में कही है । १४ के वक्ष का वक्ष विशेष सम्मन प्राप्त पद्वता है क्योंकि उस एकही वक्ष का उल्लेख योग्यदमार (कर्मकारण) में भी है —

पुष्पिण्डरं विमि विगले तथुप्पवणो हु सामथो देहे ।

पञ्जलिं थ वि पावदि इदि नरतिरियाउम सुग्धि ॥ ११३ ॥

अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय में पूर्णतर—द्विध अप-योत्त—के समान बन्ध होता है । उस एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय में पैदा हुआ साम्बादन सम्बन्धी जीव शरीर पयोति को पूरा कर नहीं सकता, हमसे उसको उस अवस्था में अनुपपन्न आधु या तिर्बन्ध-आधु का बन्ध नहीं होना ।

“इमं गाथा में पञ्चेन्द्रिय जानि, प्रमदाय, और गतिप्रम का
बन्धस्वामित्व कहकर १६वीं गाथा तक योग मार्गणा
के बन्ध-स्वामित्व का विचार करने दें ।

ओम् पण्डिते नमो गङ्गा-तमे जिमिस्कार नरनिगुञ्ज निदा ।
मनुष्ययोगे ओम् उरलं नरभंगु तस्मिन्मे ॥ १३ ॥

ओम् : पञ्चेन्द्रियप्रते गतिप्रमे त्रिनेत्रादश नरत्रिहोषं निदा ।
मनोरथयोगे ओम् ओदारिके नरभंगस्वामित्वे ॥ १३ ॥

अर्थ—पञ्चेन्द्रिय जानि और प्रमदाय में ओम्-बन्ध-
धिकार के समान—प्रकृतियन्ध जानना । गतिप्रम (तेज का
और वायुकाय) में त्रिनेत्रादश—त्रिनेत्रात्मक से लेकर नर-
त्रिक पर्यन्त ११—मनुष्यत्रिक और उच्छ्वोत्र इन १५
को छोड़, १२० में से शेष १०५ प्रकृतियों का बन्ध होता है ।
(योगमार्गणा का बन्धस्वामित्व) मनोयोग तथा वचनयोग में
अर्थान् मनोयोग वाले तथा मनोयोगसहितवचनयोग वाले
जीवों में बन्धाधिकार के समान प्रकृति-बन्ध समझना । औदा-
रिक काययोग में अर्थान् मनोयोगवचनयोगसहित औदारिक
काययोग वालों में नरभंग—पर्याप्त मनुष्य के समान बन्ध-
स्वामित्व—समझना ॥ १३ ॥

भावार्थ—पञ्चेन्द्रियजानि और प्रमदाय का बन्धस्वामित्व
बन्धाधिकार के समान कहा हुआ है, इसका मतलब यह है
कि : जैसे हमारे कर्मबन्ध में बन्धाधिकार में मानान्वय से

जाते हैं, अन्य गतियों में नहीं। परन्तु उक्त १५ प्रकृतियों को मनुष्य, देव या नरक गति ही में उदय पाने योग्य हैं।

यद्यपि गाथा में 'मणवयजोगे' तथा 'उरले' ये दोनों पद सामान्य हैं, तथापि 'ओहो' और 'नरभंगु' शब्दों के सन्निधान से टीका में 'वयजोग का' मतलब मनोयोग-साहित-वचनयोग और 'उरल' का मतलब मनोयोगवचन-योगसाहित औदारिक काययोग-इतना रक्खा गया है, इसलिये अर्थ भी टीका के अनुसार ही कर दिया गया है। परन्तु 'वयजोग' का मतलब केवल वचनयोग और 'उरल' का मतलब केवल औदारिक काययोग रख कर भी उसमें बन्धस्वामित्व का विचार किन्ना हुआ है; सो इस प्रकार है कि केवल वचनयोग में तथा केवल औदारिक काययोग में विकलेन्द्रिय या एकेन्द्रिय के समान बन्धस्वामित्व है अर्थात् सामान्यरूप से तथा पहले गुणस्थान में १०६ और दूसरे गुणस्थान में ६६ या ६४ प्रकृतियों का बन्धस्वामित्व है।

योग का, तथा उसके मनोयोग आदि तीन मूल भेदों का और सत्य मनोयोग आदि १५ उत्तर भेदों का स्वरूप और कर्ममन्त्र की गाथा ६, १०, और २४ वीं में जान लेना ॥११॥



अणु चतुर्विंशति विना, जिणपञ्चकयुताः सम्पक्ते योगिनः भवन्ति
विणु तिरिनराउ कम्मे, वि एवमाहारदुगि ओहो ॥ ११ ॥

अनचतुर्विंशति विना जिनपञ्चकयुताः सम्पक्ते योगिनः भवन्ति
विना तिर्यङ्नरायुः कर्मण्येवमाहारकद्विक ओषः ॥ १५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त ६४ प्रकृतियों में से अनन्तानुबन्धी
चतुष्क से लेकर तिर्यच-द्विक-पर्यन्त २४ प्रकृतियों को
पटा कर शेष ७० में जिननामकर्म, देव-द्विक तथा वैकुण्ठ
द्विक इन ५ प्रकृतियों के मिलाने से ७५ प्रकृतियाँ होती हैं।
* इनका बन्ध औदारिकमिश्रकाययोग में चौथे गुणस्थान के

* चौथे गुणस्थान के समय औदारिकमिश्रकाययोग में त्रिभुज
प्रकृतियों का बन्धस्वामित्व कहा है, उनमें मनुष्यादिक, औदारिक-
और प्रथम मंदनन-इन २ प्रकृतियों का समावेश है। हम पाद
जीवविज्ञान जी महाराज ने अपने दवे में संदेह डबाया है कि “चौथे
गुणस्थान में औदारिक मिश्रकाययोग उक्त २ प्रकृतियों को बाँध
नहीं सकता। क्योंकि तिर्यच तथा मनुष्य के मिश्रण दूसरों में समवेत
का सम्भव नहीं है और तिर्यच मनुष्य उस गुणस्थान में उक्त २
प्रकृतियों को बाँध ही नहीं सकते। अतएव तिर्यच गति तथा मनुष्य गति
में चौथे गुणस्थान के समय जो क्रम से ७० तथा ७१ प्रकृतियों का बन्ध
स्वामित्व कहा गया है, उसमें उक्त २ प्रकृतियों नहीं आती।” हमसे
का निवारण भी जपमोक्षसूत्र ने किया है —

वे अपने दवे में लिखते हैं कि, “गायामन ‘अणुचतुर्विंशतिमाह’ इत्य
पद का अर्थ अनन्तानुबन्धी आदि २४ प्रकृतियों यह नहीं करना,
‘इन्दु’ आदि शब्द से और भी २ प्रकृतियों लेकर, अनन्तानुबन्धी
आदि २४ तथा मनुष्यादिक आदि २, कुल २६ प्रकृतियों—यह अर्थ

पहले, दूसरे, चौथे और तेरहवें इन ४ गुणस्थानों ही में जा सकता है।' पर सैद्धान्तिकों का आशय यह है कि मिश्र प्रकार कामेय शरीर को लेकर औदारिक-मिश्रता मानी जावे, इसी प्रकार लाब्धिजन्य वैक्रियशरीर या आहारक शरीर माथ भी औदारिक शरीर की मिश्रता मान कर औदारिक काययोग मानने में कुछ बाधा नहीं है।

कामेयकाययोग वाले जीवों में पहला, दूसरा, चौथा और तेरहवां ये ४ गुणस्थान पाये जाते हैं। इनमें से तेरहवां गुणस्थान केवलममुद्धान के तमिरे, चौथे और पाँचवें समय केवलि भगवान को होता है। शेष तीन गुणस्थान अन्य जीवों के अग्निसाल गति के समय तथा जन्म के प्रथम समय में होते हैं।

कामेयकाययोग का बन्धव्यामिश्र, औदारिकमिश्रकाययोग के समान है, पर इसमें त्रिगुणध्याय और मनुष्यका का बन्ध नहीं हो सकता। अतएव इसमें सामान्यरूप से ११ पहलें गुणस्थान हैं १००, दूसरे में ६४, चौथे में ४० और तेरहवें गुणस्थान में १ प्रकृति का बन्ध होता है।

• वर्णन के अन्तर्गत कामेयकाययोग का बन्धव्यामिश्र और औदारिकमिश्रकाययोग के समान होता है। यह चतुस्र गुणस्थानों में औदारिकमिश्रकाययोग के १०० प्रकृतियों के बन्धन पर होता है। इसका ४० प्रकृतियों के बन्धन के अन्तर्गत कामेयकाययोग के चतुस्र गुणस्थानों में १ प्रकृति का बन्ध होता है।

सुरश्रोतोऽवेज्ज्वे, निरियनराउ रहिओ य नम्मिस्से ।
 वेयनिगाइम चियनिय—रुमाय नवदुवउपंवगुले ॥ ११ ॥
 सुरोपो वैक्रिये तिर्यहनरायूरहितव्व तन्मिये ।
 वेद-त्रिकादिमाद्वितीयतृतीयकपाया नवद्विचतुष्षगुले ॥ १२ ॥

अर्थ—वैक्रिय काययोग में देवगति के समान बन्धनत्व है । वैक्रियत्रिकाययोग में तिर्यक् प्रायु और मनुष्यक सिवाय अन्य सब प्रकृतियों का बन्ध वैक्रिय काययोग समान है । (वेद और कपाय मार्गणा का बन्धस्थानित्व तीन वेद में ६ गुणस्थान हैं । आदिम—पहले ४ अनन्तानुबन्ध कपायों में पड़ला दूसरा दो गुणस्थान हैं । दूसरे—अनन्तानुबन्ध नावरण—कपायों में पहिले ४ गुणस्थान हैं । तीसरे—अनन्तानुबन्ध नावरण—कपायों में पहिले ५ गुणस्थान हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—वैक्रिय काययोग । इसके अधिकारी देव ४-नाटक हो हैं । इसमें इसमें गुणस्थान देवगति के समान ४ हैं माने हुए हैं और इसका बन्धस्थानित्व भी देवगति के समान ही अर्थात् सामान्यरूप में १०४, पहले गुणस्थान में १०३, दूसरे में ६६, तीसरे में ७० और चौथे में ७० प्रकृतियों का है ।

वैक्रियाविश्रकाययोग । इस के स्वामी भी देव तथा नारक हो हैं, पर इसमें आयु का बन्ध अमरत्व है; क्योंकि ना योग अवधान अवस्था ही में तब तथा नारकों को होता है, लेकिन देव तथा नारक पदान अवस्था में, अर्थात् ६ महीने

चार ही और वैक्रियमिश्रकाययोग वाले जिनों को पहला, दूसरा और चौथा ये तीन ही गुणस्थान बतलाये गये हैं, इस कारण यह जान पड़ता है कि 'लघ्वि-द्रव्य' वैक्रियशरीर के अल्पता (कमी) के कारण उससे होने वाले वैक्रिय कारणों तथा वैक्रियमिश्रकाययोग की विवक्षा आचार्यों ने नहीं की है। किन्तु उन्होंने केवल मध-प्रत्यय वैक्रियशरीर को लेकर ही वैक्रियकाययोग तथा वैक्रियमिश्रकाययोग में कम से कम चार और तीन गुणस्थान बतलाये हैं।'

* वेद। इन में ६ गुणस्थान माने जाते हैं, सो इन अपेक्षा से कि तीनों प्रकार के वेद का उदय नववें गुणस्थान तक ही होगा है, आगे नहीं। इसलिये नवों गुणस्थानों के वेद का बन्धन्यामित्य बन्धाधिकार की तरह—अर्थात् सामान्य रूप से १२०, पहले गुणस्थान में ११७, दूसरे में १०१, तीसरे में ७४, चौथे में ७७, पाँचवें में ६७, छठे में ६१, सातवें में ५८, या ५६, आठवें में ५८, ५६ तथा २६ और नववें गुणस्थान में २२ प्रकृतियों का है।

५ वेद मांगला ने सेछर आहारक मांगला, जो १४ वीं गाथा के निर्दिष्ट है, वही तक मध मांगलाओं में बन्धन्यामित्य गुणस्थान ही का बंधन दिया गया है—बन्धन्यामित्य का मुदा मुदा बंधन नहीं दिया है। परन्तु १० वीं गाथा के अन्त में "नियमित्य गुणो हो" यह पद है, उसकी अनुवृत्ति करके इस मध वेद आदि मांगलाओं में बन्धन्यामित्य का बंधन मांगला में कर दिया है। नियमित्य गुणाद। इस पर का मतलब यह है कि वेद आदि मांगलाओं का बंधन बंधन गुणस्थानों में बन्धन्यामित्य का पद १० वीं गाथा के अन्त में दिया है।

रूप—हिमी अंश में ज्ञानरूप तथा हिमी अंश में अज्ञान-
माना जाता है। "जब दृष्टि की शुद्धि की अधिकता के कारण
मिश्रज्ञान में ज्ञानत्वकी मात्रा अधिक होती है और दृष्टि की शुद्धि
की कमी के कारण अज्ञानत्व की मात्रा कम, तब उन निष्ठान्त
को ज्ञान मान कर मिश्रज्ञानी जीवों की गिनती ज्ञानी जीवों में
की जाती है। अतएव उस समय पहले और दूसरे दो गुणस्थानों
के सम्बन्धी जीव ही अज्ञानी समझने चाहिये। पर जब दृष्टि की
अशुद्धि की अधिकता के कारण मिश्रज्ञान में अज्ञानत्व की मात्रा
अधिक होती है और दृष्टि की शुद्धि की कमी के कारण ज्ञानत्वकी
मात्रा कम, तब उन मिश्रज्ञान को अज्ञान मान कर निष्ठान्त
जीवों की गिनती अज्ञानी जीवों में की जाती है। अतएव उस
समय पहले, दूसरे और तीसरे इन तीनों गुणस्थानों के
सम्बन्धी जीव अज्ञानी समझने चाहिये। चौथे से लेकर आठवें
के सब गुणस्थानों के समय सम्यक्त्व-गुण के प्रकट होने से
जीवों की दृष्टि शुद्ध ही होती है—अशुद्ध नहीं, इसलिये इन
जीवों का ज्ञान ज्ञानरूप ही (सम्यग्ज्ञान) माना जाता है, अज्ञान
नहीं। हिमी के ज्ञान की यथार्थता या अवयवार्थता का निर्णय,
इसकी दृष्टि (ब्रह्मात्मक परिणाम) की शुद्धि या अशुद्धि पर निर्भर है।

* जो, मिथ्यात्व गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान में आता है, उसकी
मिश्रदृष्टि में मिथ्यात्वकी अधिक होने से अशुद्धि विशेष रहती है, और
जो, सम्यक्त्व की छोड़ तीसरे गुणस्थान में आता है, उसकी मिश्रदृष्टि में
सम्यक्त्वकी अधिक होने से शुद्धि विशेष रहती है।

भाग्य—

मनःपर्यायज्ञान । इसका आदिमार्ग तो मनों गुणस्थान में होता है, पर इसकी प्राप्ति होने के बाद बुद्धि, प्रत्यक्ष छंदे गुणस्थान को या भी लेता है । इस ज्ञान को धारण करने वाला, पहले पाँच गुणस्थानों में वर्तमान नहीं रहता । अन्तिम दो गुणस्थानों में भी यह ज्ञान नहीं रहता । इन दो गुणस्थानों में साविकज्ञान होने के कारण सिद्ध साधोपशमिक ज्ञान का सम्भव ही नहीं है । इन मनःपर्याय ज्ञान में उपर्युक्त ७ गुणस्थान माने हुये हैं । साधारणद्विक के बन्ध का भी सम्भव है । इनमें इन साधारणद्विक के बन्ध का भी सम्भव है । इनमें इन सामान्यरूप से ६५ और छंदे में बारहवें तक प्रत्यक्ष स्थान में बन्धाधिकार के समान ही प्रकृतियों का बन्धत्व समझना ।

सामायिक और छंदोपस्थापनीय । ये दो मंत्र छंदे ४ गुणस्थान पर्यन्त पाये जाते हैं । इसलिये इनके समय साधारणद्विक के बन्ध का सम्भव है । अतएव इन मंत्रों का बन्धत्व सामान्यरूप से ६५ प्रकृतियों २ और छंदे साधारण गुणस्थान में बन्धाधिकार के समान ही है ।

परिहारविशुद्धिकर्मयम । इस धारण करनेवाला साधारण आंग के गुणस्थानों को नहीं पा सकता । इस लक्षण के समय

“ दो गाथाओं से सम्यक्त्व मार्गणा का बन्धव्यामित्त । ”

अद्वयसमि चउ वेयगि, खइये इक्कर मिच्छत्रिगि दे
मुद्रुमि सटाणं तेरस, आहारगि नियनियगुणोदो ॥१८॥

अष्टोपशमे चत्वारि वेदके चार्थिक एकदश मिध्यात्रिके दे
सूस्मे स्वस्थानं प्रयोदशाऽऽहारके त्रिजनिजगुणोदो ॥ १९॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्व में आठ—चौथे से ग्यारहवें तक
गुणस्थान हैं । वेदक (सायोपशमिक) में ॥ गुणस्थान—चौथे से
सातवें तक—हैं । मिध्यात्व-त्रिक में (मिध्यात्व, सात्वादन और
मिश्रदृष्टि में) , देशविरति में और मूहममम्पराय में अत्र
अपना एक ही गुणस्थान है । आहारक मार्गणा में १३ गुणस्थान
हैं । वेद-त्रिक से लेकर यहाँ तक की मत्र मार्गणाओं का बन्ध-
व्यामित्त अपने अपने गुणस्थान के विषय में ओष-बन्धव्यापि-
कार के समान-है ॥१६॥

भावार्थ

उपशम सम्यक्त्व । यह सम्यक्त्व, देशविरति, प्रमत्त-
संयत-विरति या अग्रमत्तसंयत-विरति के साथ भी प्राप्त हो
सकता है । इसी कारण इस सम्यक्त्व में चौथे से सातवें तक ४ गुण-
स्थान माने जाते हैं । इसी प्रकार आठवें से ग्यारहवें तक ४
गुणस्थानों में वर्तमान उपशमश्रेणीवाले जीव को भी यह सम्य-
क्त्व रहता है । इसलिये इसमें सब मिलाकर = गुणस्थान के

दुपे है। इस साम्यवत्त्व के समय आयु का वन्ध नहीं होता-
 यह बात अगली भाषा में बर्ती जायगी। इससे चौथे गुणस्थान
 में तो देवआयु, मनुष्यआयु, दोनों का वन्ध नहीं होता और
 पाँचवें आदि गुणस्थान में देवआयु का वन्ध नहीं होता। भव-
 एव इस साम्यवत्त्व से सामान्यरूप से ७७ प्रकृतियों का, चौथे गुण-
 स्थान में ७५, पाँचवें में ६६, षष्ठ में ६२, सातवें में ५८, आठवें में
 ५८-५६-२६, नववें में २२-०१-२०-१६-१८, दसवें में १७
 और ग्यारहवें गुणस्थान में १ प्रकृति का बन्धस्थामित्व है।

वेदकः। इस साम्यवत्त्व का संभव चौथे से सातवें तक
 पार गुणस्थानों में है। इसमें आहारक-द्विक के वन्ध का संभव है
 जिसमें इसका बन्धस्थामित्व, सामान्यरूप से ७६ प्रकृतियों
 का, विशेष रूप से—चौथे गुणस्थान में ७७, पाँचवें में ६७,
 षष्ठ में ६६ और सातवें में ५६ या ५८ प्रकृतियों का है।

घाषिकः। यह चौथे से ग्यारहवें तक ११ गुणस्थानों में
 पाया जा सकता है। इसमें भी आहारक-द्विक का वन्ध हो
 सकता है। इसलिये इसका बन्धस्थामित्व, सामान्यरूप से ७६
 प्रकृतियों का और चौथे आदि प्रत्येक गुणस्थान में बन्धा-
 धिहार के समान है।

मिथ्यात्व-त्रिकः। इसमें एक एक गुणस्थान है—मिथ्यात्व
 मार्गत्वा से पदव्या, वात्स्वादन मार्गत्वा में दूमाग और मिथ्याद्वि

में तीसरा गुणस्थान है । अतएव इस त्रिक का मानान्न विशेष बन्धस्वामित्व बराबर ही है; जैसे:—मानान्न का विशेषरूप में मिथ्यात्व में ११७, सास्वादन् में १०१ और मिश्रदृष्टि में ७४ प्रकृतियों का ।

देराधिरति और मूदमसम्पराय । ये दो संयम भी एक गुणस्थान ही में माने जाते हैं । देराधिरति, केवल पाँचों गुणस्थान में और मूदमसम्पराय, केवल दसवें गुणस्थान में है । अतएव इन दोनों का बन्धस्वामित्व भी अपने अपने गुणस्थान में कहे हुये बन्धाधिकार के समान ही है अर्थात् देराधिरति का बन्धस्वामित्व ६७ प्रकृतियों का और मूदमसम्पराय का १७ प्रकृतियों का है ।

आहारकमार्गगा । इसमें तेरह गुणस्थान माने जाते हैं । इसका बन्धस्वामित्व सामान्यरूप में तथा अपने प्रत्येक गुणस्थान में बन्धाधिकार के समान है ॥ १६ ॥



“परम सत्यत्व के सम्बन्ध में कुछ
विशेषता दिग्गते हैं:—”

परमममि बहता, आउ न बंधनि तेरा धनयगुरो ।
देसगुभाउहीरो, देसासु पुन गुगउ रिता ॥२०॥”
परमपनामे वर्तमाना अन्दुले बध्मन्ति तेनायतगुणे ।
देसमनुकाएईनि देसादिपु पुनः गुरासुपेना ॥ २० ॥

अर्थ—परम सत्यत्व में वर्तमान जीव, वायु-बन्ध
नहीं करते, इनमें अघत-अधिरतमभ्यवृष्टि-गुणस्थान में
देसवायु तथा मनुष्यवायु को दोड़कर अस्य प्रकृतियों का
बन्ध होता है । और देशविरति आदि गुणस्थानों में देसवायु
के बिना अन्य स्वयोग्य प्रकृतियों का बन्ध होता है ।

भावार्थ—अन्य सत्यवस्तुओं की अपेक्षा जीवसमिद्ध
सत्यत्वमें विशेषता यह है कि इसमें वर्तमान जीव के अन्य-

• इस गाथा के विषय की सत्यता के साथ प्रार्थना सम्बरवानिध
में इसप्रकार कहा है —

“कथाम्मे कहुना, अटधुमिअपि आटप नय ।

बधनि तेरा अत्रया, गुरनर आअहि कहुनु ॥ २१ ॥

आयो देस अवाहसु दुराउईयो व आब हवयलो” इत्यादि २६

धमाय ऐसे नहीं होते, जिनमें कि आयु-बन्ध दिन के
मके । अतएव हम सम्यक्त्व के योग्य = गुणस्थान, ई
पिछली गाथा में कहे गये हैं उनमें से चौथे से सातवें तक
गुणस्थानों में—जिनमें कि आयु-बन्ध का सम्भव है—आयु-बन्ध
नहीं होता ।

चौथे गुणस्थान में उपराम सम्यक्त्व की देव-प्राप्ति, मनुष्य-
प्राप्ति का वर्जन इसलिये किया है कि वसमें इन
प्राप्ति के ही बन्ध का सम्भव है, अन्य प्राप्ति के बन्ध

उपराम सम्यक्त्व दो प्रकार का है—पहले प्रकार का प्रविष्टि-
बन्ध, जो पहले पहल अतीति मिथ्यात्व का होता है । दूसरे प्रकार का
उपरामभेदिता में होने वाला, जो आदित्य से ग्याहवे तक ४ गुणस्थानों
में पाया जा सकता है । पिछले प्रकार के सम्यक्त्व-बन्धों गुणस्थानों
में तो प्राप्ति का बन्ध सर्वथा वर्जित है । रहे पहले प्रकार के सम्यक्त्व
बन्धों चौथे से सातवें तक ४ गुणस्थान । में उनमें भी प्रविष्टि-
बन्ध प्राप्ति-बन्ध नहीं कर सकता । इसमें प्रमाण यह पाया जाता
है:—

“अश्वेपोदयमाउगर्धं काशं च सासयो कुण्डं ।

उवसममम्मदिही चउपशमिककपि नो कुण्डं ॥ १ ॥”

अर्थात् अश्वत्थानुबन्धी कषाघ का बन्ध, उमका उदय, प्राप्ति का
बन्ध और मरण-इन ४ कार्यों को साक्षात् कर सकता है
पर इन में ॥ एक को कार्य को उपराम सम्भव नहीं कर सकता ।

हम प्रमाण में यही सिद्ध होता है कि उपराम सम्यक्त्व के सम्यक्त्व
प्राप्ति-बन्धों परित्याग नहीं होने ।

का नहीं, क्योंकि चाँचे गुणस्थान में वर्तमान देव तथा नारक, मनुष्याद्यु को ही बाँध सकते हैं और त्रियम्ब तथा मनुष्य, देव्याद्यु को ही ।

उपराग मन्थस्त्री के पाँचवें आदि गुणस्थानों के पञ्च में केवल देव्याद्यु को छोड़ दिया है । इस का कारण यह है कि उन गुणस्थानों में केवल देव्याद्यु के बन्ध का सम्भव है; क्योंकि पाँचवें गुणस्थान के अधिकारी त्रियम्ब तथा मनुष्य ही हैं और छठे मानव गुणस्थान के अधिकारी मनुष्य ही हैं, जो केवल देव्याद्यु का बन्ध कर सकते हैं ॥ २० ॥

“ दो गाथाओं में लेखा का बन्धस्थामित्य ।”

आदरे अहारसयं, आहारदुग्ध-धातुलेमानिगे ।

तं निन्योसं मिच्छे, मायाइमु सच्चाई ओहो ॥ २१ ॥

ओषेऽष्टादशातनाहमकद्विच्येनयादितेनया त्रिके ।

मार्गीधौनं मिध्यात्वे सासादनादिषु सर्वश्रौषः ॥ २१ ॥

अर्थ—पहली तीन—दूध, नील, कारोत—लेखाओं में आहारक-द्विक को छोड़, १२० में से शेष ११८ प्रकृतियों का ओष-नामान्य-बन्धस्थामित्य है । मिध्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर नामकर्म के सिवाय ११८ में से शेष ११७ का बन्धस्थामित्य है । और सासादन आदि अन्य सद-दूसरा, तीसरा, चौथा तीन—गुणस्थानों में ओष (बन्धाधिकार के समान) प्रकृति-बध है ॥ २१ ॥

संज्ञ नरपनपूरा, उज्जोयवठ नरयवार वि
विशु नरयवार पम्हा, अत्रिणारा इया मिय

तेमोनरवनगोना उज्जोयवठनरपनपूरा विना शुभा
विना मरवनादरा पम्हा अत्रिणारा इया मिथ्याते

एन मार्गवाधों में केरवा-मार्गवा का समावेश है। इसमें
केरवाधों का बहुपुं गुणस्थान सम्बन्धी ३३ प्रमाणों का
स, गोम्मतार को भी सम्मिलित है। क्योंकि इनके व
की गा० १०३ में भी ये गुणस्थान में ३३ प्रमाणों
परवर्ण में माना हुआ है।

इस प्रश्न १ हृष्य यदि तीन केरवा के बहुपुं गुणस्थान
सम्बन्ध-मिथ के विषय में कर्मस्थान और गोम्मतार (कर्म
धों का बोर्ड मतभेद नहीं है।

पान्थु ह्य वर धी जीययिजयती ने और धी जयतोम
एन गाथा के अपने अपने हवे में एक शब्द उदाई है, वह इन प्रश्न
है उन दो देव पापु का बन्ध माना नहीं जा सकता। क्योंकि
मागवती मिथ्यान्त, शतक १० के पहले उद्देश में हृष्य-जीय-का
केरवाधों, जो सम्बन्धी हैं उनके पापु-बन्ध के सम्बन्ध में धीगीत
रवामी के प्रश्न पर मागवान महापीर ने कहा है कि-“हृष्य यदि त
केरवाधों सम्बन्धी, मनुष्य पापु ही को बांध सकते हैं, अन्य क
को नहीं। उन्ही उद्देश में धीगीतन रवामी के बन्ध प्रश्न का उत्तर दे
हृने मागवान म पर भी कहा है कि-“हृष्य यदि तीन केरवाध ल तिर्य
रवा मनुष्य का सम्बन्ध है व किमी भी पापु का नहीं बांधते।
इस प्रश्न १४ मागवान इतना है कि उद्देश तीन केरवाधों सम्ब
विषय में ३३ प्रमाणों का बन्ध माना नहीं जा सकता।

थयै—वेजोलैरया का व्यवस्थामित्य नरक-नवक-त्रिक, सूक्ष्मत्रिक और विकल-त्रिक—के मियाय अन्य मय तियों का है। उद्यात-चतुष्क (उद्योत नामक, त्रिय-च त्रिय-च आयु) और नरक-द्वारा (नरकात्रिक, सूक्ष्म त्रिक, विकलत्रिक, एकेद्रिय, स्वायर, आदय) इन सोलह प्रकृतियों

सो भी देवी तथा नारकों की अपेक्षा में। धर्मगयती के उद्गमन कृष्ण आदि तीन सेरवाओं का अनुम्य गुणस्वान-मन्त्रवी कथन त्व देव-प्राप्तु-रहित अर्थात् ७९ प्रकृतियों का माना जाना कीर्तन कर्मग्रन्थ में ७७ प्रकृतियों का माना गया है। "

उद्ग शंका (विरोध) का समाधान नहीं दिया गया तथाकारों ने बहुभुत-गम्य कह कर उसे छोड़ दिया है। गोमन्त्रमा इस शंका के शिरो अगह ही पड़ी है। क्योंकि इसे भगवती का मान्य करने का आग्रह नहीं है। पर भगवती का माननेवाले प्रकृतियों के शिरो यह शंका अपेक्षणीय नहीं है।

उद्ग शंका के सम्बन्ध में अब तक किसी की ओर से प्रामाणिक समाधान प्रकट न हो, यह समाधान मान लेने में आशय नहीं जान पड़ती कि कृष्ण आदि तीन सेरवावाले मन्त्रों के प्रकृति-सम्बन्ध में देवप्राप्तु की गणना की गयी है सो कर्मग्रन्थ के अनुसार; वैदिक मन्त्र के अनुसार नहीं।

कर्मग्रन्थ और विद्वान्त का किसी २ विषय में मत भेद है, बाग पीछे कर्मग्रन्थ की ३३ वीं पाया में उल्लिखित वैदिक मन्त्र निर्विवाद सिद्ध है। हमलिये हम कर्मग्रन्थ में भी उद्ग देव प्राप्तु ग्रन्थ होने न होने के सम्बन्ध में कर्मग्रन्थ और विद्वान्त का मत मान कर आशय के विरोध का परिहार कर लेना अनुचित नहीं।

प्रकृतियों को बाँध नहीं मचने । क्योंकि उक्त ६ प्रकृतियाँ, इन्द्र-
 आदि तीन अशुभ लेश्याओं में ही बाँधी जाती हैं । इनके
 तेजोलेश्या वाले, उन स्थानों में पैदा नहीं होते जिनमें—कण-
 गति, मृदम एकेन्द्रिय, और विरुद्धेन्द्रिय में—उक्त ६ प्रकृतियों
 का उद्भव होता है । अनन्य तेजोलेश्या में सामान्यरूप में ११
 प्रकृतियों का, पहले गुणस्थान में तीर्गङ्करनामकर्म और कर-
 रक-द्विक के मियाय १११ में से शेष १०८ का और दूसरे
 से सातवें तक प्रत्येक गुणस्थान में बन्धाधिकार के अनुसार
 बन्धस्वामित्व है ।

पद्मलेश्या । यह भी पहले सात ही गुणस्थानों में पैदा
 जाती है । तेजोलेश्या में इसमें विरोधता यह है कि इनमें
 धारण करने वाले उक्त नरक-नयक के आतिरिक्त एकेन्द्रिय, त्रि-
 धर और आतप इन तीन प्रकृतियों को भी नहीं बाँधते । इनमें
 में पद्मलेश्या के सामान्य बन्ध में १२ प्रकृतियाँ छोड़कर ११
 प्रकृतियाँ गिनी जाती हैं । तेजोलेश्या वाले, एकेन्द्रियरूप में
 पैदा हो सकते हैं, पर पद्मलेश्या वाले नहीं । इसी कारण
 एकेन्द्रिय आदि उक्त तीन प्रकृतियों भी वर्जित हैं । अतः
 पद्मलेश्या का बन्धस्वामित्व, सामान्यरूप में १०८ प्रकृतियों
 का, पहले गुणस्थान में तीर्गङ्करनामकर्म तथा आहारर-
 रक के घटाने में १०५ का और दूसरे में सातवें तक प्रत्येक गुण-
 स्थान में बन्धाधिकार के समान समझना ।

शुक्ललेखा। यह लेखा पहले १३ गुणधानों में पायी जाती है। इसमें पद्मलेखा में विशेषता यह है कि पद्मलेखा की चरित्र—जहाँ बांधने योग्य—धर्मात्मियों के अलावा और भी ५ धर्मात्मियों (उद्योग चतुर) इसमें पायी नहीं जाती। इसका कारण यह है कि पद्मलेखा वाले, निरर्थक में—जहाँ कि उद्योग-चतुर का उदय होता है—जन्म मरण करने हैं, पर शुक्ललेखा वाले, जन्म नहीं लेते। बावजूद वृत्त १६ धर्मात्मियों का, १२ वर्ण में गिनी नहीं जाती। इसमें शुक्ल

। इस का एक गढ़ा होती है। जो इस प्रकार—

प्रायश्चित्त का जो नामों में आये देवलोका तक का सम्पत्कामिन्, कहा है, इसमें दस नामों में आये देवलोको का-जिनमें तत्त्वधे अन्वय ४ गुण २३ के भाव तथा समस्त-माया १०२ के अनुसार शुद्ध लेखा है। मानी जाती है—सम्पत्कामिन् भी आयाता है। प्रायश्चित्त माया में वह दूधे दूधे सादि मय देवलोको के सम्पत्कामिन् के चतुराग्र, शुक्ललेखा वाले भी उद्योग चतुर को बांध सकते हैं, पर इस धर्मात्मियों माया में शुद्ध लेखा का जो सामान्य सम्पत्कामिन् कहा गया है उसमें उद्योग चतुर को नहीं गिना है, इसलिए यह पूर्णपर विशेष है।

जो औपनिषदों और भी जयसोमसूत्रों में भी अपने अपने देवों में उद्योग विशेष को दर्शाया है

विश्वामित्र वसिष्ठ में भी इस कर्मस्थ के समाज ॥ बल्लभ है मास्मदय ॥ १६६ वृत्त १०२। म मास्मदय देवलोका तक का ४-५२ नाम २ कड़ा गण है उसमें इस कर्मस्थ की प्रायश्चित्त

मेरवा का वन्द्यव्यामित्र सामान्यरूप में १०४ दशरूपों में
 मिश्रित गुणमान में त्रिनानकर्म और आकाश-रूप में
 गंधा के समान ही उद्योग-धनुष्क परिगणित है। तथा अमर-
 १२१ में शुक्लमेरवा का वन्द्यव्यामित्र कहा हुआ है त्रिनेत्रों
 धनुष्क का वर्णन है।

इस प्रकार उर्मद्वय तथा गोम्मटगार में वन्द्यव्यामित्र
 होने पर भी दिगम्बरीय शास्त्र में उपर्युक्त विरोध नहीं होता कि
 कि दिगम्बर-मत के अनुसार ज्ञानेश्वर (श्वेताम्बर प्रसिद्ध स्वामी
 देवसोक में पद्ममेरवा हो है- (नारायण-अध्याय-४-श्लो-२० की नवविंशति
 टीका)। अतएव दिगम्बरीय सिद्धान्तानुसार यह कहा जा सकता है कि
 सहस्रार देवसोक पर्यन्त के वन्द्यव्यामित्र में उद्योग-धनुष्क का वर्णन
 है सो पद्ममेरवा पक्षा की अपेक्षा में, शुक्लमेरवा वही प
 अपेक्षा में नहीं।

परन्तु नारायण भाष्य, समर्थों आदि श्वेताम्बर-मत
 में देवसोकों की मेरवा के विषय में ज्ञेया उक्तवत् है उनके धनु
 उक्त विरोध का परिहार नहीं होता।

यद्यपि इस विरोध के परिहार के लिये श्री जीयसिद्धजीने
 कुछ भी नहीं कहा है, पर श्री जयसोमसूत्रि ने तो यह विचार है कि
 "उक्त विरोध को दूर करने के लिये यह मानना चाहिये कि जो
 आदि देवसोकों में ही केवल शुक्लमेरवा है।"

इस विरोध के परिहार में श्री जयसोमसूत्रि का कथन, जो
 देने योग्य है। उस कथन के अनुसार छठे आदि तीन देवसोकों में
 शुक्ल - वन्द्यव्यामित्र और नववें आदि देवसोकों में केवल शुक्ल मेरवा
 मान लेने से इस विरोध दूर जाना है।

संस्कृत १०१ का, और दूसरे गुणस्थान में नपुंसक वेद, हुं-
मयान, तिष्ठदाह, मेवार्तमेहनन-इन ४ को छोड़ १०१ में से

एक यह प्रत्यक्ष होता है कि ललाटे भाव्य और मयदयी-
ज-त्रिगुणें एते, भागवे और भादवे देवलोके में भी कंपन हुआ
गया था ही। उल्लेख है उनकी क्या नीति ? दूसरा समाधान यह बताया
गिरे कि ललाटे भाव्य और मयदयी-गुण में जो कंपन है वह
गुणों की प्रवेष्टा में। अर्थात् एते आदि तीन देवलोको में हुआ
गया था ही ही। बहुतसा है, इसलिए उस में प्रवेष्टा की सम्भव
है वर भी उसका कथन नहीं किया गया है। और में भी प्रवेष्ट
प्रवेष्टा प्रवेष्टा में होने है। अन्य आनिषों के होते हुए भी जब
मयदयी भी बहुतसा होता है वह नहीं कहा जाता है कि वह मयदयी
का भाग है।

इस समाधान का सम्भव होने में ही अयसोमगुरि का कथन
सहायक है। इस प्रकार त्रिगुणों में भी उस सम्भव में मार्गद्वय
है। इसलिए उस ललाटे-भाव्य और मयदयी-गुण की प्रवेष्टा की
प्रवेष्टा बनाकर उस विशेष का परिहार का लेना चातेगत नहीं जान
करना।

त्रिगुण में त्रिगुणित गुणों के बाद क्रमशः नीचे दिये जाते हैं:-

“ शेषेषु ललाटेकादृष्यामयोर्धाम्ना चतुर्गुणैश्च । ”

(ललाटे भाव्य)

‘ कथमिदं एतत् तेषां संतापम् मुहुरन्तुंति पुरा ’

(मयदयी का १०१)

रोप ६७ प्रकृतियों का है । तीसरे से लेकर तेरहवें तक प्रत्येक गुणस्थानमें वह बन्धाधिकार के समान है ॥ २२ ॥



“मध्य, अमध्य, मंजी, अमंजी और अनाहारक
मांगेरा का बन्धस्यामित्व ।”

सर्वगुण भव्यसन्निभु, ओद्गु अमध्या असंनि मिच्छममा ।
सासाणि असंनि सन्निच, कम्मणभंगो अणादारे ॥ २३ ॥
सर्वगुण मय्यमन्निप्पोपोऽमध्या असन्निनो मिच्छाममाः ।
सासादनेऽमंजी सन्निरत्तमंणमगोऽनादारे ॥ २४ ॥

अर्थ—मय (चौदह) गुणस्थान वाले मध्य और मंजरी का बन्धस्यामित्व बन्धाधिकार के समान है । अमध्य और असंक्षियों का बन्धस्यामित्व मिच्छात्व मांगेरा के समान है । साम्बादन गुणस्थान में अमंक्षियों का बन्धस्यामित्व मंजी के

“कर्णार्थीसु न निग्यं, मदरमहम्मरमांति निग्यदुगं ।
निरियाऊ उञ्जाथा, अत्थि तद्दो नुत्थि मदरचउ ।”
(समसाला का १११)

“गुक्के मदरचउक्के यामंनिमवाग्गं च न व अन्धि”
(समसाला का ११२)

प्रत्येक प्रत्येक भव्यमान्नवर्गावष्टु वदमेवया । गु-
महागुक्कगन मरहयः पु वदगुक्कममयथा नवार्थमादि ।

कम होती है। इसमें ये दो लक्ष्याएँ मानवें गुणस्थान तक हो पायी जाती हैं। शुक्ल लक्ष्याका स्वरूप इतना शुभ हो गया है कि वह तेरहवें गुणस्थान तक पायी जाती है।

इस प्रकरणका 'बन्धस्वामित्व' नाम, इसलिये रखा गया है कि इसमें मार्गणाओं के द्वारा जीवों की प्रकृति-बन्ध-मन्वन्विता योग्यता का—बन्धस्वामित्व का—विचार किया गया है।

इस प्रकरण में जैसे मार्गणाओं को लेकर जीवों के बन्धस्वामित्व का सामान्यरूप में विचार किया है, वैसे ही गुणस्थानों को लेकर विशेष रूप में भी उसका विचार किया गया है, इसलिये इस प्रकरण के जिज्ञामुष्टों को चाहिये कि वे इसको असंदिग्धरूप से जानने के लिये हमारे कर्मग्रन्थ का ध्यान पहले संपादन कर लें। क्योंकि हमारे कर्मग्रन्थ के बन्ध-धिकार में गुणस्थानों को लेकर प्रकृति-बन्ध का विचार किया है जो इस प्रकरण में भी आता है। अतएव इस प्रकरण जगह जगह कह दिया है कि अमुक मार्गणा का बन्धस्वामित्व पन्थाधिकार के समान है।

इस गाथा में जैसे लक्ष्याओं में गुणस्थानों का कथन, बन्धस्वामित्व में अलग किया है वैसे अन्य मार्गणाओं में गुणस्थानों का कथन, बन्धस्वामित्व के कथन में अलग इस प्रकरण में नहीं किया है। इस का कारण इतना ही है कि अन्य मार्गणाओं में जो ज्ञानने विचारने गणनस्थान और कर्मग्रन्थ में दिखाये गये इनमें कोई मत भेद नहीं है पर लक्ष्या के कर्मग्रन्थ में ऐसा

संप्रदाय में दो पक्ष चले आते हैं। मैथ्यान्निक पक्ष में पहला गुणस्थान (चतुर्थ कर्मप्रश्न गा. १८) को कर्मप्रस्थिक पक्ष पहला दूसरा दो गुणस्थान मानता है (चतुर्थ गा. १-२८)। दिगम्बर संप्रदाय में यही दो पक्ष देखते हैं। सर्वोपरि मिथ्या और ज्ञानकारण में मैथ्यान्निक पक्ष तथा कर्मप्रश्न में कर्मप्रस्थिक पक्ष है।

(३) आहारिकमिश्रकाययोग मार्गण में मिथ्या गुणस्थान में १०६ प्रकृतियों का बन्ध जैसा कर्मप्रश्न में है वैसा ही गोम्मटसार में। गा. १४ की टिप्पणी पृ. ३३-३६।

(४) आहारिकमिश्रकाययोग मार्गण में सम्यक्त्व को ७५ प्रकृतियों का बन्ध न होना चाहिये किन्तु ७० प्रकृतियों का, जैसा टिकाकार का मन्तव्य है। गोम्मटसार को यही मन्तव्य अभिमत है। गा. १५ की टिप्पणी पृ. ४०-४२।

(५) आहारिकमिश्रकाययोग में ६३ प्रकृतियों का बन्ध कर्मप्रश्न में माना हुआ है, परन्तु गोम्मटसार में ६२ प्रकृतियों का। गा. १५ की टिप्पणी पृ. ४५।

(६) कृष्ण आदि तीन स्वरूप धारण सम्यक्त्वियों को मैथ्यान्निक दृष्टि में ७६ प्रकृतियों का बन्ध माना जा सकता है, जो कर्मप्रश्न में ७७ का माना है। गोम्मटसार भी उस विषय में कर्मप्रश्न के समान ही ७७ प्रकृतियों का बन्ध मानता है। गा. २१ की टिप्पणी पृ. ६०-६२।

(६) गतित्रय—अनाम्यर दिगम्यर दोनों मंत्रद्वारा
नेत्रः कायिक वायुकायिक जीव, स्थावर नामकर्म के उद्धार
कारण स्थावर माने गये 'हं', तथापि अनाम्यर माहिस
पपेक्षा विरोध में उनको त्रय भी कहा है—

“तेन वायु च वायुः, उराला च तस्या तदा ।

एषेने तस्या त्रिविहा, नेति भेष सुयेह मे ॥”

(उत्तराख्ययन म. ३६ पं. १०)

“तेनोवायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रयम् । तेषां त्रयम्
द्विधा हि तत् गतिर्ना, लब्धियन्तश्चः तेषोवायुर्गतिर्ना उद्धारणा
लब्धियन्तोऽपि त्रयम्वांमतिः”

(टीका-वादिदेवान् सानिर्वाहः)

“ तेनोवायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रयम् । ” (तन्वार्थं च २-११)
त्रयम् च द्विविधं, क्रियात्वं लब्धियन्तश्च । तत्र क्रिया कर्म चलनं दैवज
माहिरतः क्रिया प्राप्य तेनो वायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रयम्वांमतिः
परमाद् द्वीन्द्रियादिना क्रिया च देशान्तस्थाति लब्धयेति ” । (तन्वा
म. २-१४ भाष्य टीका) ।

दुविहा ननु तपजीवा लब्धितया चैव गदितया चैव

लब्धिय नेडवाक तेनोवायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रयम्वांमतिः ॥ ”

(भाषागम त्रिविधं म. ११)

पथार्थः स्थावरा स्थावरा रात्रय कर्मोद्धारार्थिना

दुनागमर्था तत्र, त्रिविधं गतित्रयम् ॥ लोक प्रकाश १-२१)

पृ. ३७-३८ पर दिया है। पंचमंग्रह इस विषय में इन्द्र के समान उस दो आयुषों का वन्द्य मानता है:—

“ वेङ्गिज्जुने न आहार ।”

घंघरु न डालमीने, नरपतिग द्दुनमगाडं ।” (४-१२४)

टीका— “ वन्धु निर्वेगायुर्मनु शशुम्नइत्याध्ययमाययोऽस्मिन् स्था
माययस्थायां तयो बन्धमभव । ” (श्री वलवर्गी)

मूल तथा टीका का मांगरा इन्ना ही है कि आहारक, नरकशिक और देवायु इन छः प्रकृतियों के मिश्रण ११४ प्रकृतियों का वन्द्य, औदारिकमिश्रकाययोग में होता है। औदारिकमिश्रकाययोग के समय मन पर्याप्त पूर्ण न हो जाने के कारण ऐसे अध्ययनाय नहीं हाने जिन में कि नरकशु तथा देवायु का वन्द्य हो सकता है। इमन्निचे इन दो का वन्द्य उक्त योग में मले ही न हो, पर तिर्यचायु और मनुष्यायु का वन्द्य उक्त योग में होता है क्योंकि इन दो आयुषों के वन्द्य—योग्य अध्ययनाय उक्त योग में पाये जा सकते हैं।

(२) आहारककाययोग में ६३ प्रकृतियों का वन्द्य मा. १५ वां में निदिष्ट है। इस विषय में पंचमंग्रहका का मन भिन्न है। वे आहारक काययोग में ४३ प्रकृतियों का वन्द्य मानते हैं—

‘ सगच्छ नरह बजह आहार उन्नयमु (४-१०)

गा	शा	सं०	दि०
१	अमन्त्रशामाद	अनन्तुर्विरात्पादि	अनन्तानुबन्धी आदि २४ प्रकृतियों
२	२.१.१.१.१	अशान-त्रिक	मति आदि तीन अशान
३	२.४.३.३	अपसुप्	अपसुर्दंशन
४	२.४.२.३.३	यथाक्यात	यथाख्यातपारित्र
५	३.५.५.५.५	अयमादि	अयिरत्तसम्यग्दृष्टि आदि
६	३.५.५	अष्टन	आठ
७	४.३.५.५.५	अयन गुण	अयन गुणस्थान
८	४.५.५.५.५	अष्टादशरात	एक सौ अठारह
९	५.५.५.५.५.५	अतिनाहारक	जिन नामफर्म तथा आहारक-प्रिक रहित
१०	५.५.५.५	अमठय	अभय
११	५.५.५.५	अमस्तिन	अमंसी
१२	५.५.५.५.५	अमनाहारक	अनाहारक धर्मांगना

गा०	प्रा०	सं०	हि०
३	इथि	स्त्री	स्त्री येर नामकर्म
४	इगमउ	एकसत	एक सौ एक
५	इय	इति	इस प्रसार
६	इगनघई	एक गयति	एकानवे
१०	इगिदिस्तिग	एकेंद्रिय-त्रिक	एकेंद्रिय आदि तीन प्रहोतयो
११	इगिदि	एकेंद्रिय	एकेंद्रिय मार्गण
१६	इयकार	एकादश	ग्यारह
२२	इदम (इमाः)	इमाः	यह

उ

उरजमुग	औपचिह्निक द्विक	औपचिह्निक-द्विक सामकर्म
उरजोप	उपयोग	उपयोग सामकर्म

क

गा०	प्रा०	सं०	हि०
३	कुसुमा	कुसुमा	अमृतम विशायोगनि नामरुमं
१०	कल्प-दुग	कल्प-द्विक	दे० देवलोक
१२	कैद	कैयिन्	काई
१५	काम	कामेण	कामेण वाययोग
१८	कैवलदुग	कैवल द्विक	कैवल-द्विक
२३	काम्मण	कामेण	कामेण वाययोग
२४	कामस्थग	कामेनय	कामेनय नामक प्रकरण

ख

१६	खद्वय	खयिक	खयिक सामयनल
----	-------	------	-------------

ग

१९	गद्वय	गद्वयानि	गनि योमन्
----	-------	----------	-----------

मा०	ज	सं	मा०	रि०
१	जिणपन्ध	जिनपन्ध	१	जिनेभर
२	जिण	जिन	२	जिन नामरुग्गे
५	जुस	जुव	५	सदित
६	जिण-इषकारस	जिनेकादराक	६	जिन आदि ग्यारह प्रवृत्तियाँ
१०	जोह	व्याप्तिप्	१०	उपेक्षितो देव
११	जल	जल	११	जलकाय
१२	जति	यान्ति	१२	पते हे
१३	जिणियकार	जिनेकादराक	१३	जिन आदि ग्यारह प्रवृत्तियाँ
१४	जिण-पण्ण	जिन-पण्णक	१४	जिन आदि योष पधुत्तियाँ
१५	जिण-पण्ण	जिन-पण्णक	१५	जिन आदि योष पधुत्तियाँ
१६	ओमि	ओमि	१६	सन्ध्यादि-केनली
१८	जणार	जणार	१८	सन्ध्यादि-केनली

गा०	भा०	ज	सं	हि०
१	जिणपन्द	जिनपन्द	जिनपन्द	जिनेश्वर
२	जिण	जिन	जिन	जिन नामकर्त्त
५	जुच	युत	युत	सहित
६	जिण-इकरस	जिनैकादशक	जिनैकादशक	जिन आदि ग्याए प्रकृतियौ
१०	लोइ	उयोसिप्	उयोसिप्	उयोसिप्पी देव
११	जल	जल	जल	जलफाय
१२	जनि	यान्ति	यान्ति	पाने दे
१३	जिणिरकार	जिनैकादशक	जिनैकादशक	जिन आदि ग्याए प्रकृतियौ
१४	जिण-पणु	जिन-पंचक	जिन-पंचक	जिन आदि ग्याए प्रकृतियौ
१५	जिण-पणु	जिन-पंचक	जिन-पंचक	जिन आदि ग्याए प्रकृतियौ

मा०	मा०	मं०	दि०
८	देव	देश	देव विमलि
९	देसाद	देसादि	देवविमलि अदि तुल्यजन
१७	डु	डि	डो
१७	दम	दमन	दम
१८	दुमि	डि	दो
१८	दो	डि	डो
२०	देवमनुष्याड	देवमनुष्याडु	देव बालु मया मनुष्य बाडु
२४	देविदगुरि	देवेन्द्रगुरि	देवेन्द्रगुरि
		न	
३	नरद	नरक	नरदगनि नामकर्म
३	अपु	अपुमक	अपुमक वंद मोहनिय
३	निय	नीष	नीष मोत्रकर्म
३	नग	नर	मनुष्यगनि नामकर्म

४	निरव	निरव	निरव	निरव
४	नपुषउ	नपुषउ	नपुंसक-पुल्ल	नपुंसक-पुल्ल
४	नराउ	नरापु	नरापु	नपुष्य आयु
४	नरापुग	नर-पुिक	नर-पुिक	नपुष्य-दिक
४	नपुंसपउ	नपुंसक-पुल्ल	नपुंसक-पुल्ल	नपुंसक-पुल्ल
४	नरव-सोल	नरक-पुंसराफ	नरक-पुंसराफ	नरक गति स्मरि १६ प्रकृतिर्यौ
४	नर	नर	नर	मनुज
४	नयमउ (घ)	नयराज	नय	एक धौ नय
	नयरं	नयरं	नयरं	विशेष
			नदी	नदी
			नर-पुिक	नर-पुिक
				न विर्येय आयु

गा०	प्रा०	सं०	दि०
१७	पदमा	प्रथम	पहला
१८	परिहार	परिहार	परिहार विमुक्त चारित्र
२२	पगडा	पद्मा	पद्म लेखिका
		वै	
१	बन्ध-विदारण	बन्ध-विधान	बन्धका का करना
१	बन्धसामिस	बन्ध-स्वामित्व	बन्धोपकार
४	बन्धदि	बन्धनति	बोँधते हैं
५	विसर्गिर	द्विसप्तति	बहसर
८	वीर्य कसाय	द्वितीय कथाय	अप्रत्याहयानापरण कथाय
१२	विति	प्रवन्ति	कहते हैं
१६	विषय	द्वितीय	दूसरा
१७	पारण	प्रादरान्	पारण
२०	बोपंति	बन्धनति	बोँधते हैं

१८

गद-मुञ्च

गति-भुत

गति चौर भुतमान

१९

मिष्ट-तिग

मिथ्याधिक

मिथ्यादि चारि तीन गुणस्थान

२०

मिष्ट-सग

मिथ्या-सम

मिथ्यादि गुण स्थान के तुल्य

र

२

रिसद

रूपम

रस-पुष्पम-नाराय संहनन

५

रयणाद

रत्नादि

रत्नप्रभा चारि नरक

११

रयण

रत्न

रत्नप्रभा

१६

रदिष्य

रदित

रदित

१७

लोभ

लोभ

लोभ कयाय मार्गेणा

२४

लिरिय

लिभिज

लित्ता नृप्या

प्रा०	सं	वि	सं	ह्रि
१०	अपि च	वि	अपि च	भो
१०	वन	वण	वन	चाण व्यन्तर
१०	व्य	व्य	इय	यया
११	विगल	विगल	विगल	विकलेन्द्रिय
१६	वेङ्कव	वेङ्कव	वैक्रिय	वैक्रियकाययोग
१६	वेय-तिग	वेय-तिग	वेद-त्रिक	तीन वेद
१६	वेयग	वेयग	वेदक	वेदक सम्यक्त्व
२०	वदंत	वदंत	वर्तमान	वर्तमान
			स	
			धी	धी
			समाप्त	संक्षेप
			मुर	देवगति नामधेय
१	स्विरि	स्विरि		
१	समाप्त	समाप्त		
२	मुर	मुर		

१०	साहित्य	साहित	साहित
११	महर्षिभूषणाराध	मनन्तुभारादि	सनत्कुमार आदि देव लोक
१२	सुहसंतेर	सूर्य-त्रयोदशक	सूदम नामकर्म आदि तेरह प्रकृतियाँ
१४	साय	सान	सात वेदनीय
१५	संज्ञलक्षण विग	संज्ञलक्षण-त्रिक	संज्ञलन कोथ मान माया
१६	सग	सतन्	सात (७)
१८	समर्थ	सामायिक	सामायिक चारित्र
१९	सहस्र	सूर्य	सूर्य-नीपराय चारित्र
१९	सटाण	स्वस्थान	अपना गुणस्थान
२१	साणार	सासादनादि	सास्वापन ३ दि गुणस्थान
२१	सय्य	संज्ञ	सा
२२	सय्य	गुब्बला	गुब्बल लेखा

परिशिष्ट ग

‘वन्द्यस्वामित्व’ नामक तीसरे कर्मग्रन्थ की मूल गाथाएँ

बंधविहाणविमुक्तं, बंधिय मित्रिवद्धमाणजिणचन्दं ।

गइयाईमुं बुच्छं, समामच्चो बंधमामित्तं ॥ १ ॥

जिणमुर पिउवाटारदु-देवाउ य नरयमुद्धम विगलतिगं ।

एगिदिधायरायय-नपुमिच्छं हुंइधेवहुं ॥ २ ॥

अणमग्ग।गिद संघय-एकुग्ग नियइत्थिदुद्धम धोणतिगं ।

उज्जोयतिरिदुगं तिरि-नराउनरउरलदुगरिसदं ॥ ३ ॥

सुरदुगुराईमयउज्जं, इगसउ ओहेण वधदि निरया ।

तित्थ विण मिच्छि मयं, मामणि नपु-वउ विण्ण इगुरे ॥ ४ ॥

विण्ण अण-द्धवीम भीमे, रिमयरि ममेमि जिणुनगाउजुया ।

इय रयाणाइमु भगो, पंकाइमु निधयरहीणो । ५ ॥

अजिणमणुआउ ओहे, मलमिण नरदुगुच्च विण्ण मिच्छं ।

इगनरई मागाणे निरिआउ नपुमपउयज्ज ॥ ६ ॥

अण्णउरईमविरदिआ, सनरदुगुच्चा य वयरि धीगदुगे ।

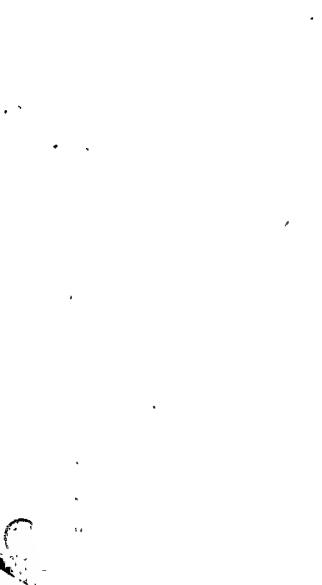
सनरमउ ओदि मिच्छे, पउर्तानरिया विण्ण जिणाइय (१) ॥ ७ ॥

विण्ण नरयसोन्न मामणि, सुरउ अणणत्ताम । ३ण्ण मीमे ।

गमुगाउ मयारि ममे, धीयउगाण रिणा देव । ॥

मणनाणि सग जयाई, समदयदेय चउ दुन्नि परिहारे ।
 केवलदुगि दो चरमा-उजयाइ नय महमुओहिदुगे ॥ १८ ॥
 अह उधतमि चउ येयगि, गइये इकार मिन्द्यतिगि देमे ।
 मुहुमि सदाणं तेरम, आहारगि नियनियगुणोदो ॥ १९ ॥
 परमुबममि वटंता, आउ न वंधंति तेण अजयगुणे ।
 देवमगुआउहीणो, देमाइमु पुण मुगइ विण्णा ॥ २० ॥
 ओइं अट्टारमयं, आहारदुग्गुण-माउलेमनिगे ।
 तं नित्थोयं मिन्दे, माणाइमु मत्त्वहिं ओहो ॥ २१ ॥
 तेऊ नरयनवृणा, उज्जोयपउनरयवारविणु मुक्का ।
 विणु नरयवार पम्हा, अजिण्णाहारा इमा मिच्छे ॥ २२ ॥
 मव्यगुण मअ-मांनिमु, ओहु अमज्जा अमंति मिच्छममा ।
 सामणि अतंति संनिट्ठ, कम्मणभंगो अखाहारे ॥ २३ ॥
 तिमु दुमु मुक्काट गुणा, चउ मग तेरत्ति वन्धमामित्तं ।
 देविंदमुरि जिदियं, नेयं कम्मत्थयं मांड ॥ २४ ॥





मण्डल की कुछ पुस्तकें ।

(श्री बापूभारामजी महाराज-रचित)		(साक्षा कलामलजी एम. ए.-रचित)	
१ नवनिर्णय प्रासाद ३)		१६ उपनिषद् रहस्य ... २)	
२ सम्यक्ज्ञं शरणोद्धार ॥२)		१७ व्याकरण बोध ... २)	
३ जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर ॥)		१८ व्याकरण सार ... १)	
श्री जिन विजयजी-रचित		१९ साहित्य संगीत ... १)	
४ विशिष्टि श्रियेति १)		२० सामाजिक सुधार ... १)	
५ शत्रुंजय तीर्थोद्धार ॥२)		२१ जैनतन्त्र मीमांसा ... १)	
६ जैनमन्त्रसार २)॥		२२ सप्तभर्गानन्द ... १)	
(पं० प्रज्ञालालजी-अनुवादित)		२३ गीता दर्शन ... १)	
७ जयलक्ष्मण १-		(मुनि साहित्यिक कृत)	
८ जीव विचार १)		२४ प्रकाशदर्शिका ... १)	
९ धर्मशास्त्रोक्त २)		२५ अक्षयभूषणहिन्दू भाषान्तर १)	
१० पक्षिजा कर्मसम्बन्ध १), १२)		२६ भद्रामर और कल्याण	
११ धूमरा कर्मसम्बन्ध १०), १२)		मन्दिर धर्म गहित ... १)	
१२ लोमरा कर्मसम्बन्ध १)		२७ अक्षयभूषण और अक्षयभूषण	
(पं० इन्द्रजी-रचित)		२८ दिव्य जीवन ... १)	
१३ स्वामीमानन्द और जैनधर्म ॥)		२९ स्वर्गीय जीवन ... १)	
१४ धर्मोपदेश मीमांसा १)		३० कुमार पञ्च नाट्य ... १)	
१५ जैनमन्त्रमयी मीमांसा १०)		३१ सप्तशतिका ... १)	
32 The Chicago Pressnote		१ - 12	
33 Some Distinguished Jain		11 - 8 - 0	
34 The study of Jainism		11 - 1 - 0	
35 Lord Krishna's Message		11 - 1 - 0	
36 The Message of Jainism		11 - 1 - 0	

मण्डल की कुछ पुस्तकें ।

(धी) चा.मारासत्री महाराज संपन्न)		(भा.भा. हज्रामरात्री एम. ए. संपन्न)	
१ मयनिर्णय प्रामाद	३)	१९ उर्वरिनाद् मय्य	... २)
२ मयस्य मयस्योद्धार	॥८)	१७ व्याकरण सार	... २)
३ जैन धर्म विवरण प्रमोचर(४)		१८ व्याकरण मय	... १२)
धी जिन विवरण-संपन्न		१९ मयि'य मयि'न	... १२)
४ विवरण विवरण	१)	२० मयि'य मयि'न	... २)
५ मयस्य मयस्योद्धार	॥८)	२१ जैनधर्म मयि'न	... १)
६ जैनधर्ममय	॥८)	२२ मयस्य मयि'न	... २)
(धी) प्रमोचर-संपन्न		२३ मयि'न मयि'न	... २)
७ मयस्य	... १)	(मयि'न मयि'न-मयि'न)	
८ जैन विवरण	॥८)	२४ जैनधर्म विवरण	... १)
९ जैनधर्ममय	॥८)	२५ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
१० पदिका कर्ममय (१) १.२)		२६ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
११ मयस्य कर्ममय (४), ॥८)		२७ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
१२ मयस्य कर्ममय	॥८)	२८ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
(धी) हज्रामरात्री संपन्न)		२९ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
१३ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)	३० मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
१४ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)	३१ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
१५ जैनधर्म मयि'न मयि'न	... १२)	३२ मयस्य मयि'न मयि'न	... १२)
३३ The Chicago Production	...	३३ The Chicago Production	...
३४ Some Distinguished Latin	...	३४ Some Distinguished Latin	...
३५ The study of Journalism	...	३५ The study of Journalism	...
३६ Lord Krishna's Message	...	३६ Lord Krishna's Message	...
३७ The Message of the	...	३७ The Message of the	...

मण्डल की कुछ पुस्तकें ।

[illegible]

मण्डल की कुछ पुस्तकें ।

(श्री चामारामजी महाराज रचित)		(लाला कचोमलजी वृम. वृ. रचित)	
१ नवनिर्णय ग्रामाद	३)	११ उपनिषद् रहस्य	... २)
२ माधवार्जुन शरणोद्धार	॥२॥	१२ व्याकरण बोध	... २)
३ जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर	॥॥	१३ व्याकरण मार	... १२
श्री जिन विजयजी-रचित		१४ नाट्य संगीत	... १२
४ विजय विवेचि	... ३)	२० सामाजिक सुधार	... २)
५ गणेशोत्सव तीर्थोद्धार	॥२॥	२१ जैननाथ श्रीमोगा	... १)
६ जैनन्याय	॥१॥	२२ मन्त्रभोगाव	... १)
(५० मन्त्रालय-चनुवादिन)		२३ योगा दर्शन	... २)
७ मन्त्रालय	... १)	(मुनि साहित्य-कर्म)	
८ जीव विचार	... २)	२४ विचारधर्मविषयक	... ॥॥
९ मनिरामनाथ	... २)	२५ कवचभूषण (इष्टी भाषान्तर १२)	...
१० पदिका कर्मग्रन्थ (१) १२)	...	२६ मन्त्रालय और कल्याण	...
११ दुर्भरा कर्मग्रन्थ (॥॥), ॥२॥	...	मन्त्रालय और मन्त्रालय	... २)
१२ मोगा कर्मग्रन्थ	५)	२७ मन्त्रालय और कल्याण	... २)
(५० कर्मालय (१-रचित)		२८ विचार और मन	... ॥॥
१३ मन्त्रालय और मोगा	... १२)	२९ मन्त्रालय और मन	... १२)
१४ नवमेध यज्ञ म.मोगा	॥॥	३० मन्त्रालय और मन	... १२)
१५ जैनविचार और मोगा	...	३१ मन्त्रालय और मन	... १२)
१६ मन्त्रालय और मोगा
१७ मन्त्रालय और मोगा
१८ मन्त्रालय और मोगा
१९ मन्त्रालय और मोगा
२० मन्त्रालय और मोगा

